अनन्त श्री विभूषित

स्वामी श्री रामहर्षणदासजी महाराज

विशुद्ध ब्रह्म बोध

अनन्त श्री विभूषित पंचरसाचार्य
स्वामी श्रीमद् रामहर्षणदास जी महाराज

श्री हर्षण साहित्य प्रकाशन
परिक्रमा मार्ग, नयाघाट, अयोध्या
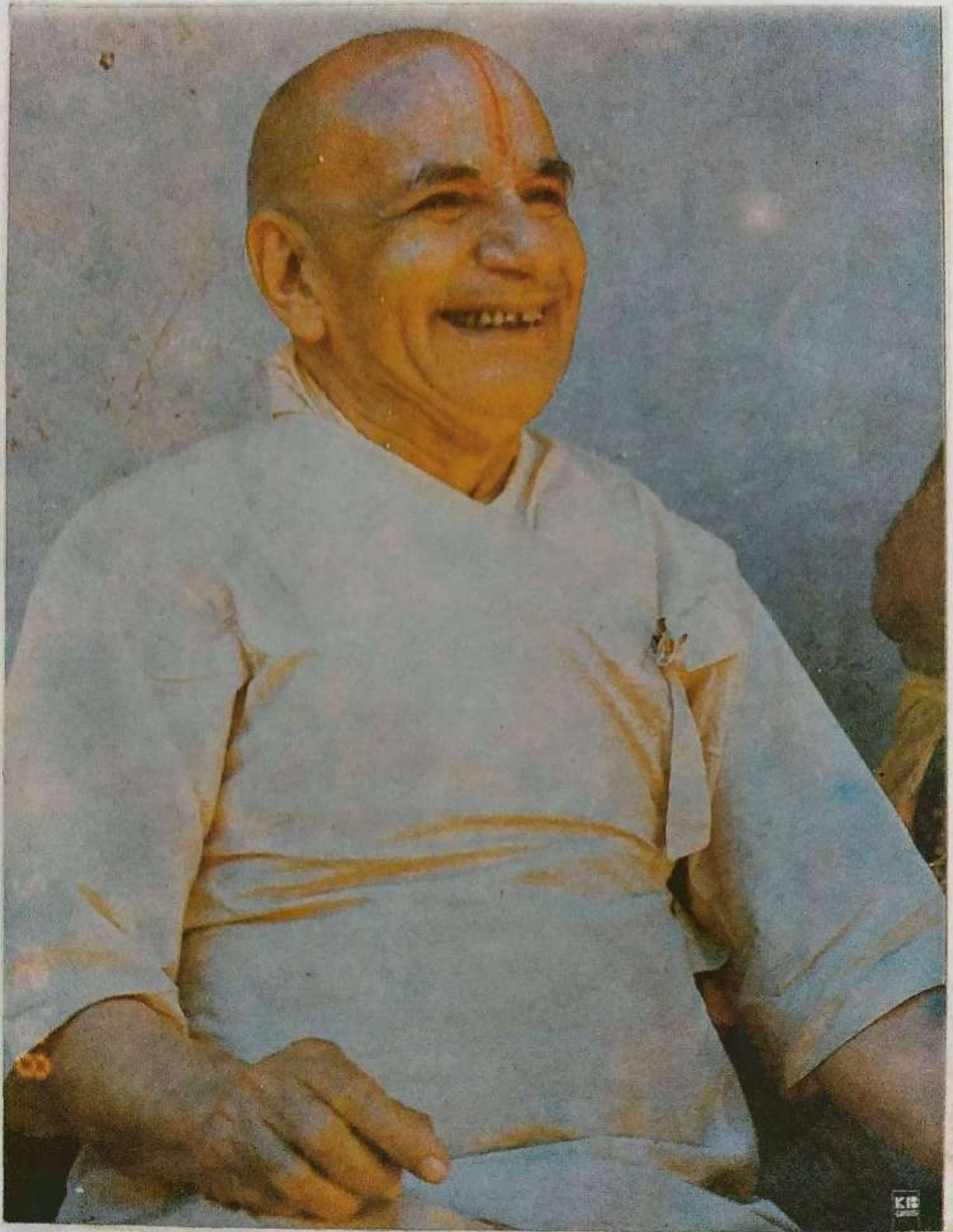
अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री रामहर्षण दास जी महाराज

प्राक्कथन

विद्या, वास्तव में ब्रह्म विद्या ही है, जो साक्षात् सच्चिदानन्द स्वरूपिणी है। ब्रह्म विद्या की पर्यवसिति अपरोक्ष ब्रह्म–बोध में है, वह बोध ब्रह्मलीन सद्गुरु से संप्राप्त होना संभव है और ब्रह्मविद वरिष्ठ सद्गुरु की प्राप्ति सच्चे जिज्ञासु को ही संभव है तथा सच्ची शिष्यता परमार्थ कामी आर्त अधिकारी को ही सुलभ हो पाती है एवं आर्त अधिकारित्व प्राप्तव्य वस्तु के अभाव दशा की दुर्दशा पर होना संभव है और वह दयनीय दुर्दशा त्याज्योपादेय ज्ञान के बिना अप्राप्य ही रहती है। त्याज्योपादेय ज्ञान बिना सतसंग के संभव नहीं होता और वह सत्संग की सुलभता बिना अहैतुकी भगवद् कृपा कटाक्ष पात के अशक्य व दुर्लभ है अतएव जिन्हें ब्रह्म तत्व समझने की जिज्ञासा हो गई है, उन्हें भगवद् कृपा का आश्रय लेकर सद्गुरु की शरणागति ग्रहण करनी चाहिए। सर्वभावेन समर्पित, समर्पण विरोधी–वर्गों से शून्य अपने शिष्य की जिज्ञासा अवलोकन कर, सद्गुरु अपना सर्व समर्पण (सर्वज्ञान) शिष्य को कराने के लिए बाध्य हो जाते हैं। अस्तु वही ब्रह्मज्ञान जो परम्परागत सद्गुरुओं से सदशिष्यों को प्रदान किया जाता था और किया जा रहा है, इस ब्रह्म बोध नामक ग्रन्थ में अपनी बुद्धि के अनुसार गुरु–शिष्य के संवाद रूप में प्रस्तुत किया गया है। पाठक त्रुटियों को क्षमा करेंगे। आशा करता हूँ जिज्ञासुओं को इस ग्रन्थ से कुछ लाभ हो सका तो लेखक का लेखन कार्य सफल हो जायेगा।

संत पद रेणु संरक्षित

–रामहर्षणदास

विशुद्ध-ब्रह्म-बोध

श्री सद्गुरुं त्वहं वन्दे, ज्ञान मूर्तिं दयानिधिम्।
विशुद्ध ब्रह्म बोधंच, ब्रवीमि यत् कृपांशतः।।

शिष्य :- (प्रणिपात कर)

हे मेरे सर्वस्व शरणागतवत्सल सद्गुरु देव! आप श्री ही मेरे सर्वविधि बन्धु हैं, आप ही संसार-सिन्धु में निमज्जनोन्मज्जन करने वाले प्राणियों को अपना करावलम्बन देकर अमृतार्णव की ओर आकर्षित करते हैं तथा उस अनिर्वचनीय सुधा-सागर को अपने अतृप्त अधिकारियों के कर-कलश में सर्वभावेन समर्पित करके ही कृतकृत्य होते हैं। ऐसे कृपासागर को प्राप्त कर दास को कुछ भी प्राप्तव्य शेष नहीं रहेगा ऐसा अपना अडिग विश्वास है। प्रभो! एक जिज्ञासा आपके इस अज्ञानी शिष्य के अन्तःकरण में उत्पन्न हुई है, सेवक आज्ञा की प्रतीक्षा करता हुआ विनयावनत प्रणिपात कर रहा है, प्रसन्नाचार्य की प्रसन्नता ही परमार्थ प्राप्ति की प्रवर एवं अप्रतिम आकर है। प्रभो! यदि आज्ञा हो जाय तो दास उस जिज्ञासा को आप श्री के सामने व्यक्त करके अपने हृदय गुफा के गहन अज्ञानान्धकार को आपके कृपा-सूर्य की रश्मियों से सदा सदा के लिए आलोकित कर ले।

गुरुदेव :-

प्रिय वत्स! सच्छिष्य की परमार्थ-पिपासा ही उसके

सच्चे परमार्थ स्वरूप की धवल-धारिका है। सद्गुरु अपने ज्ञान प्रवण आश्रित अनुग की जिज्ञासा को जानकर उसी प्रकार गुह्याति गुह्यतम् वार्ता को सुनाने के लिये आतुर हो उठते हैं, जैसे बछड़े को देखकर वात्सल्य भरी गाय उसे दुग्धपान कराने के लिये। अस्तु! शीघ्र अपनी जिज्ञासा को प्रकट कर मेरी प्रसन्नता का हेतु बनो, क्योंकि सदाचार्यसदा स्वशिष्य की तत्त्व जिज्ञासा को सुनकर उसी प्रकार प्रसन्न होते हैं जैसे ज्वराक्रान्त निर्बल निराहारी अपने बालक के मुख से भोजन पाने की प्रबल आतुरता को सुनकर मोहपूर्ण माता।

शिष्य :–

कृपासिन्धु की सीकरांश कृपा का अधिकारी न होते हुए भी हे कृपालो! आपकी कृपा ने दास को वरण ही कर लिया अतएव अब यह अकिंचन करतल संस्थित आमलकवत परमार्थ ज्ञान को प्राप्त कर कृतकृत्य हो जायेगा। जय हो श्री सद्गुरु देव की।

गुरुदेव :–

वत्स! तुम जैसे शुश्रूषा परायण आचार्याभिमानी निष्ठ शिष्य के हृदय में उस परम अद्वय तत्व के अर्क का उदय स्वयमेव हो जाता है किन्तु आचार्य मुख से श्रवण कर उस ज्ञान के आलोक का विस्तार उर के आकाश में वैसे ही छा जाता है जैसे ऊष्म ऋतु में द्विप्रहर गामी तापकर का ताप जगत में। अस्तु, प्रसन्नमना अकुतोभय प्रश्न-परम्परा के प्रशस्त पथ का अविलम्ब अनुसरण करो।

शिष्य :–

हे मेरे नेत्रहीन के नेत्र! प्रकाश्य के प्रकाशक बोध स्वरूप मेरे गुरुदेव! जगत को कोई सत्य कहते हैं, कोई असत्य और कोई सत्यासत्य दोनों स्वीकार करते हैं अतएव संशयशील शिष्यों के अन्तःकरण के वन में भ्रम का भालु (ऋक्ष) ज्ञान के बच्चे को भयभीत करता ही रहता है इसलिए आप श्री अपने अनुभवीय निश्चय सिद्धान्त के वचन बाणों से उस भ्रम के ऋक्ष का सर्वथा संहार कर अकुतोभय बनाने की कृपा करें। दास का प्रार्थनीय प्रथम प्रश्न यह है कि यह जगत क्या है और जगत का कारण कौन है तथा इसके बनने का प्रयोजन क्या है।

गुरुदेव :–

वत्स! यह जगत पूर्णतम परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान का चिन्मय विलास है, जिसमें उनसे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है और स्वयं वे ही भगवान इसके उपादान, निमित्त और सहकारी कारण हैं अचिन्त्य अतर्क्य एवं अनिर्वचनीय अद्वय तत्व संज्ञक परमात्मा पुरुषोत्तम भगवान नित्य आत्मगुणों से युक्त, नित्य आत्म–तन मण्डित हैं और नित्य आत्म--केलि में निरंतर निरत रहना उनका स्वभाव एवं धर्म है अर्थात उनकी सच्चिदानन्दमयी आत्मा ही सगुण स्वरूप हैं, जिसमें श्रेयगुणों के अतिरिक्त हेय गुणों का सर्वथा सर्वभावेन, सर्वकाल में अभाव है, उन सर्व समर्थ प्रभु की देह भी सच्चिदानन्दमयी है अतएव सच्चिदानन्दमय शरीर से सच्चिदानन्दमय गुणों का

जब उदय होता है तब जो लीला बनती है, वह भी सच्चिदानन्दमयी होती है। जैसे— समुद्र सर्वदा अपने में अपने ही द्वारा किल्लोल करता है, उसकी उर्मियाँ, बुदबुदे और बूँदे सबके सब समुद्र ही होती हैं अर्थात् लहरमय जो समुद्र का किलोल है वह जलमय ही होता है, उसी प्रकार चिन्मय परमात्मा का जगत रूप विलास चिन्मय ही है। सत् से असत् का प्रभव होना असंगत और असम्भव है। इस सिद्धाँत की पुष्टि गीता में स्वयं भगवान के श्रीमुख से की गई है। यथा– 'बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान माम् प्रपद्यते, वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः'। सर्वोत्कृष्ट साधनाओं के साध्य की चरम सीमा यही है कि साधक को असाधारण और अपरोक्ष यह बोध हो जाय कि सारा दृश्यादृश्य जगत वासुदेव भगवान का ही स्वरूप है जो इस भाव में स्थित हो जाता है, वही पूर्णातिपूर्ण महात्मा है, किन्तु ऐसे महात्मा अति दुर्लभ हैं, इन भगवत वचनों से यही परम सत्य निष्कर्ष निकलता है कि यह जगत जो भगवान का चिन्मय विलास है, वह पुरुषोत्तम भगवान ही है और भगवत रूप होने से सत्य है, सत्य है, सत्य है।

शिष्य :—

हे संशय के मूषक का विनाश करने वाले विड़ाल स्वरूप सद्गुरु देव! आप श्री के वचनों को श्रवणकर यह निश्चय होता है कि यह जगत जो भिन्न–भिन्न आकार प्रभृत प्राणियों से भरा परिणामशील जड़–चेतनात्मक दिखता है, न सत्य है न असत्य है और न सत्यासत्य है, यह पूर्णतम परब्रह्म परमात्मा पुरुषोत्तम भगवान का सच्चिन्मय विलास है जो

परमात्मा में ही प्रतिष्ठित है, निश्चय है कि लीलाप्रिय परमात्मा ही अनेक रूप से दृश्यमान हो रहा है अतएव यह प्रतीयमान दृश्य, जगत नहीं अपितु सत्य स्वरूप परमात्मा ही है। जगत में सत्य असत्य एवं सत्यासत्य की दृष्टियाँ भ्रममात्र हैं अर्थात् मृत्युधर्मा विनाशशील एवं बहुत प्रकारों से दृष्टिगोचर होने वाला परिणामी संसार सत्य नहीं है और अनुभव में आने के कारण इसे असत्य भी नहीं कह सकते तथा जब न सत्य है, न असत्य है तब इसे सत्यासत्य भी कहते नहीं बनता। सत्य एक अद्वय पूर्णतम परब्रह्म परमात्मा पुरुषोत्तम भगवान ही है, उनकी अखंड सत्यता से उनका चिद् विलास भी परमात्म स्वरूपत्वात् सत्य है।

गुरुदेव :–

वत्स ! तुम्हारी सुमेधा सम्यक् ज्ञानार्जन करने वाली सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं, यही कारण है कि मेरी कही हुई वार्ता का ग्रहण तुरन्त तुम्हारी बुद्धि का विषय बन जाता है जो मेरी प्रसन्नता का हेतु है, तुम जैसे शिष्य को प्राप्त कर धन्य हो गया मैं।

शिष्य :–

हे दयालो ! आप श्री अपनी अहैतुकी अनुकम्पा के आधीन होकर, शरणागत शिष्य के हृदयाकाश में अपने बोध-विग्रह के सूर्य को उदित कर स्वयं प्रकाशते हैं अतएव आप ही वहाँ के एकमात्र सम्राट हैं। आप ही ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता हैं अर्थात बोध, बोध-प्रदाता और बोध ग्रहण करने वाले

मेरे सदगुरुदेव ही हैं, यह अल्पज्ञ अकिञ्चत है। आपकी भगवती भास्वती कृपा की जय हो। प्रभो! श्रुतियों एवं मनीषियों के मुख से सुना गया है कि जगत का कारण ब्रह्म है कृपया इसके प्रकार को समझाने का कष्ट करें। उपर्युक्त आपके वचनों से यही बोध होता है कि जगत परमात्मा का विकसित स्वरूप है अस्तु यदि ऐसा ही है तो परमात्मा को कारण कहना कैसे संभव एवं सुसंगत है।

गुरुदेव :–

वत्स! वास्तव में परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान न कार्य हैं न किसी के कारण हैं और न कोई उनका कार्य है क्योंकि वे अखंड सत्ता वाले परब्रह्म परमात्मा अपने स्वरूप में सदैव एक रस संस्थित हैं, परिणाम न होने के कारण उनमें कारण–कार्य, धर्मी–धर्म आदि विशेषणों का अभाव है वे कारण–कार्य, आदि तत्व बोधक शब्दों से सर्वथा परे अद्वय तत्त्व हैं। श्रुतियों एवं सूक्ष्मदर्शियों का परब्रह्म परमात्मा को कारण कहकर समझाना अज्ञानियों के परमात्मसाक्षात्कार एवं बोध के लिए हैं जैसे- महदाकाश एक अखण्ड, अनन्त, महान, सूक्ष्म और अपरिछिन्न सर्व व्यापक तत्त्व है, उससे उसी में उसी की सहज स्थिति से क्रमशः वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी उत्पन्न होकर उसी महदाकाश में स्थित है और वह उक्त इन सब तत्त्वों में पूर्णतया व्याप्त हैं। तथा इन्हीं तत्त्वों से अनन्त घटाकाश, मठाकाश, जलाशयाकाश भी निर्मित होकर उसी महदाकाश ही में स्थित हैं, देखने में अनेकरूपता दृष्टिगोचर हो रही है किन्तु विचार दृष्ट्या महदाकाश जैसा का तैसा एक रस स्वयं

में स्थित है, उसमें कोई परिणाम नहीं हुआ तथा व्यापक-व्याप्य भेद भी उसमें औपाधिक ही है क्योंकि उसके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। जिस प्रकार सूत्र से बहुत से विविध प्रकार के वस्त्रों का निर्माण होता है, सूत्र वस्त्रों में भी व्यापक-व्याप्य की औपाधिक कथन शैली श्रवणगोचर होती ही है, किन्तु विचारक, अज्ञानियों की दृष्टि से सूत्र का परिणाम वस्त्र के आकार में हो गया है, ऐसी प्रतीति में आने वाली वार्ता को अपने ज्ञान का विषय नहीं बनाता, उसे तो सूत्र में परिणाम नहीं मालुम होता। सूत्र स्वरूपानुसार स्वयं में सहज ही स्थित है। पर जैसे उक्त दृष्टान्तों में कारण कार्य का अभाव है, वैसे ही अक्षरातीत परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान में भी कारण-कार्य अप्रतिष्ठत है, कारण भी वही, कार्य भी वही है, व्यवहारिक वाणी के द्वारा श्रुतियों एवं शास्त्रों में जो कारण कार्य, रूपेण परब्रह्म और अपरब्रह्म का बोध कराया गया है वह इसलिए कि अज्ञानी लोगों की जो जगत दृष्टि है, वह विराट जगत को ब्रह्म का कार्य श्रवणकर मनन निदिध्यासन के द्वारा ज्ञानावस्थित हो जाय और ब्रह्म तथा जगत में भेद का सर्वथा अभाव जानकर स्वयं ब्रह्म स्वरूप हो जाय अर्थात कारण और कार्य की एकता उसी प्रकार स्वीकार कर ले जैसे ज्ञानी, मिट्टी और घट में तथा सूत्र और पट में एवं स्वर्ण और आभूषण में केवल मिट्टी सूत्र व स्वर्ण को ही देखता है, विजातीय अन्य वस्तु का दर्शन घट, पट और आभूषण में नहीं करता। हाँ, अज्ञानी भले अज्ञान की प्रधानता से घट, पट, आभूषण में अनेकों नामों-रूपों का अवलम्बन लेकर अनेकता का दर्शन करे। समुद्र और सामुद्र को कारण कार्य कहते हैं

किन्तु जल के अतिरिक्त कारण-कार्य में अन्य कुछ नहीं है, इसी प्रकार सच्चिदानन्द भगवान और जगत में ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य तत्व का सर्वथा सर्वकाल में अभाव है।

शिष्य :-

हे ज्ञान स्वरूप मेरे गुरुदेव! जब परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान में परिणाम नहीं होता तो यह विराट जगत का वैभिन्न एवं वैचित्र नेत्रों का विषय क्यों बन रहा है।

गुरुदेव :-

वत्स! परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान वास्तव में अपरिणामी हैं, वे सर्वदेश सर्वकाल में एकरस बने रहते हैं। उनकी चिद् शक्ति अथवा चेतनपने में कोई परिवर्तन नहीं होता। मात्र बुद्धि और उसके धर्मों से अध्यस्त होने पर परमात्मा में परिणाम सा प्रतीत होता है वे परम पुरुष परावर स्वरूप हैं, स्वयं प्रकाशमय हैं तथा परावर से परे भी हैं, बुद्धि, मन, श्रोत, चक्षु, वाक् और प्राणादि सभी उनके प्रकाश्य हैं, जैसे जल की तरंगों पर पड़ने वाला प्रकाश हिलता हुआ सा दृष्टि का विषय बनता है, किन्तु प्रकाश हिलता नहीं, हिलता है पानी। इसी प्रकार चिद् शक्ति को समझना चाहिये।

शिष्य :-

हे संशय-सर्प के शमनकारी गरुड़! जब परम चेतन परमात्मा ही परमात्मा एकमौत्र सर्वसमय, सर्वदेश में प्रतिष्ठित हैं तो ये बुद्धि आदि विजातीय जड़ तत्व कहाँ से, कैसे उत्पन्न हो गये, जिनके कारण एक चेतन परमात्मा में अनेकानेक जड़

तत्वों का प्रभावपूर्ण प्रत्यक्षपन, ज्ञान का विषय बनकर सत्य में असत्य का दर्शन करा रहा है।

गुरुदेव :–

वत्स ! जैसे चेतन प्राणियों के शरीर से विजातीय नखलोम आदि जड़ वस्तुयें उत्पन्न होती हैं। पृथ्वी से वृक्ष आदि अन्य पदार्थ जो भूमि से भिन्न प्रतीत होते हैं, उत्पन्न होते हैं और उर्णनाभि से तन्तु की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा में उन्हीं के संकल्प से बुद्धि आदि तत्वों का प्राकट्य होता है प्राणियों के अविकसित स्वरूप में जैसे नख, लोम आदि पहले से ही प्रतिष्ठित रहते हैं, औषधियों की अभाव दशा में भी वसुन्धरा जैसे विविध बीजों को अपने अन्तरभुक् किये रहती है और मकड़ीतन्तु–जाल सृजन के प्रथम भी सम्पूर्ण तन्तुओं को उदरस्थ किये रहती है तथा इनकी संज्ञा भी क्रमशः चेतन, भूमि और मकड़ी, दोनों दशाओं में सुरक्षित रहती है। उसी प्रकार परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान चिदचित् विशिष्ट हैं। जगत के अभावदशा में जीव और माया विशिष्ट परमेश्वर सूक्ष्म रहता है और जगत के दृश्यमान अवस्था में स्थूल चिदचित् विशिष्ट स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, इसलिए वह परब्रह्म परमात्मा सूक्ष्म चिदचित् विशिष्ट और स्थूल चिदचित् विशिष्ट कहलाता है। इसी अर्थ में पर और अवर संज्ञा वाला भी श्रुतियों ने परमेश्वर को कहकर पुकारा है, जो पर है, वही अवर है, जो अवर है, वही पर है अर्थात् सूक्ष्म चिदचित् विशिष्ट ब्रह्म और स्थूल चिदचित् विशिष्ट ब्रह्म में एकता (अद्वैत) का दर्शन करना ही परमार्थ

दर्शन है, यही विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का साक्षात्कार है।

वट-बीज में जैसे सूक्ष्मतया तना, शाखा, टहनी, पत्र, फूल और फल सभी विद्यमान रहते हैं और समय पाकर वही वट बीज विशाल वृक्ष का स्वरूप धारण कर लेता है, वैसे ही परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान में जीव व माया एकरस मिले हुये अगोचर स्थित रहते हैं। ईश्वर जीव और माया मिलकर ही परब्रह्म, परमात्मा, भगवान आदि नाम उस अद्वय तत्व के कहे जाते हैं, जैसे-बीज बोकला (बाह्यावरण) और रस या ग्राह्य भाग मिलकर ही फल की फल संज्ञा होती है।

शिष्य :-

हे भवसागर के शोषक मेरे सदगुरु देव! आश्चर्य! परब्रह्म परमात्मा परम चेतन होते हुए भी जड-चेतनात्मक जगत के रूप में दृष्टि-पथ का पथिक बन जाता है और तदनुसार व्यवहार क्षेत्र में विविध क्रियाओं का कारण होकर भी कर्मों व कर्म फलों से सर्वदा अलिप्त और अछूता बना रहता है।

गुरुदेव :-

वत्स! परमात्मा आकाश से भी सूक्ष्म और अचिन्त्य शक्ति समन्वित अनिर्वचनीय एवं अतर्क्य अद्वय तत्व है, उसमें स्वगत, स्वजातीय तथा विजातीय भेद का नित्य अभाव है, वह "कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं" सर्व समर्थ प्रभु है। उसे श्रोत्र के द्वारा न श्रवण किया जा सकता न चर्म चक्षुओं का विषय ही बनाया जा सकता, न वाक्य के द्वारा उसका वर्णन किया जा

सकता, और न प्राण के द्वारा वह प्राणित होता अपितु उसी परब्रह्म परमेश्वर की शक्ति व प्रेरणा से उक्त करण व प्राण अपना अपना कार्य करने में सक्षम होते हैं। वह काल, कर्म, स्वभाव और गुण से अतीत है। अस्तु, अवश्यमेव वे पुरुषोत्तम भगवान आश्चर्यमय हैं। वे महान से महान और अणु से अणु हैं, परस्पर विरोधी धर्मों के युगपद आश्रय हैं, अपने आप में पूर्णातिपूर्ण हैं। उन पूर्ण भगवान से पूर्ण निकाल लेने पर भी वे पूर्ण ही रहते हैं अतएव उनका पर और अवर स्वरूप दोनों ही पूर्ण है, दोनों एक ही हैं। पूर्णतम परब्रह्म परमात्मा में जगत उसी प्रकार प्रतिष्ठित है जैसे समुद्र में लहर। नानात्व का दर्शन होने से परमात्मा में कोई न्यूनता नहीं आती, वे पुरुषोत्तम भगवान सृष्टिकाल में भी अपने स्वरूप में उसी प्रकार स्थित रहते हैं जैसे जगत के अदर्शन काल में। परब्रह्म परमात्मा में कभी परिवर्तन होता ही नहीं, इसलिए सहज स्वयं में सदा जैसा का तैसा स्थित रहने के कारण उन्हें न किसी का कारण कहा जा सकता और न किसी को उनका कार्य।

वत्स ! विचारणीय वार्ता का स्मरण करो। एक योगी जब अपने चित्त के संकल्प से अनेक निर्माण चित्तों का सृजनकर लेता है, जो उसके चित्त के आश्रयी रहते हैं तथा निर्माण चित्तों के अनुसार वह एक साथ अनेक रूप धारण कर लेता है किन्तु वह जैसा का तैसा ही रहता है, उसमें परिणाम नहीं होता। वह सृजन और संहार में एक स्वरूपतया ही स्थित रहता है तब अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न अनन्त भगवान जो अद्वितीय योगेश्वर एवं योग स्वरूप हैं, सदा एक रस बने रहकर विविध चिन्मय विलास का आनन्द अपने में, अपने

द्वारा अपने ही लेते हों तो कौन आश्चर्य! किन्तु जब हम एक साधारण नट या जादूगर के खेल का मर्म न जान कर आश्चर्य सागर में गोते लगाने लगते हैं, तब उस अगोचर अनिर्वचनीय और अचिन्त्य, सर्व समर्थ परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान के चिन्मय लीला विलास में आश्चर्य मान लें तथा उनकी आत्म-केलि को बुद्धि का विषय न बना सकें तो इसमें कौन आश्चर्य है। जादूगर जैसे कुछ नहीं करता, वह करता हुआ भी स्वरूप में ही स्थित रहता है, उसके सेवक को उसका मर्म अविदित नहीं रहता, उसी प्रकार उन परम प्रभु के मात्र सेवक ही उन्हीं की कृपा से उनकी एक रसता सम्पन्न सच्चिदानन्दमयी आत्म-केलि, आत्म-गुण और आत्म-तनुपने में निरन्तर एक रस परब्रह्म परमात्मा को परिणामहीन देख-देखकर उनका अनुभवानन्द लेते हैं।

शिष्य :–

मेरे सद्‌गुरु देव! पूर्णतम परब्रह्म की परिभाषा क्या है?

गुरुदेव :–

वत्स! जो सबसे बृहद हो, अनंत हो, अपरिछिन्न हो अर्थात अणु से अणु और आकाशादि महान तत्वों के भी बाहर भीतर एक रस परिपूर्ण रहकर सबको अपने में आवृत्त किये रहता है, जैसे मिश्री के बड़े से बड़े और छोटे से छोटे ढेले का मीठापन, उसी को ब्रह्म कहते हैं, जिसको यथातथ्य कोई न जानता है और स्वयं के अतिरिक्त वह भी अन्य तत्व के ज्ञान

का सर्वथा अभाव पाता हो वही ब्रह्म है। ज्ञान स्वरूप परब्रह्म परमात्मा में ज्ञाना-ज्ञान और ज्ञेय के त्रिपुटी का विलीनीकरण रहता है क्योंकि उसके अतिरिक्त अकिंचित है, वह न किसी का कारण है न कोई उसका कार्य है इसलिए वह समुद्र जैसा अठखेलियां खेलता हुआ भी अपने को सदा एक रस अर्थात परिणाम हीन पाता है, ज्ञान स्वरूप होते हुए भी अपने ज्ञान के विषय की प्राप्ति, अपने अतिरिक्त न प्राप्त होने से वह सदा एक रस अपने ही में रमता रहता है, उसमें न काल है न देश है न अवस्था है, न प्रकाश है न अन्धकार है, न एक है, न अनेक है, वह सच्चिदानन्दमय ब्रह्म रस स्वरूप, अखण्ड, अनंत, अगोचर और अपरिणामी है। हे वत्स ! वास्तव में उपर्युक्त विशेषण उसकी ओर जाने के संकेत मात्र है, इनसे उस परब्रह्म पुरुषोत्तम का वर्णन एवं ज्ञान अपर्याप्त ही रहता है।

शिष्य :-

हे प्रभो ! परब्रह्म परमात्मा पुरुषोत्तम भगवान को कोई निर्गुण,निराकार एवं निर्विशेष कहते हैं और कोई सगुण साकार तथा सविशेष कह कर निरूपण करते हैं इसलिये कथित विषय के संशय का निर्मूलन दास के हृदय-क्षेत्र से सदा के लिये जिस प्रकार से हो सके, उसी विधि को ग्रहण कर महती कृपा का दर्शन कराने का कष्ट करें।

गुरुदेव :-

वत्स ! परब्रह्म परमात्मा के विषय में जिसको जैसा

बोध है वह वैसा ही तो कहेगा। अन्धों के द्वारा भिन्न-भिन्न अंगों का स्पर्श किया हुआ करिवर कई प्रकार से नेत्रहीनों के मुख से वर्णन किया जाता है और उस गज के अलग अलग अंग अलग-अलग अन्धों के स्पर्श ज्ञान के आकार के होते भी हैं, यह सत्य है किन्तु कोई दुराग्रह करे कि मैंने हाथी का ज्ञान हस्तामलक प्राप्त कर लिया है, वह मोटा खम्भा जैसा निःसंदेह होता है, कोई अन्धा कहे कि नहीं नहीं तुम्हारी वार्ता सर्वथा सत्य से रहित है, वह सूप के आकार का होता है। अन्धों की वार्ता का निष्कर्ष यही है कि उन सबका ज्ञान अधूरा ही होता है। वे सबके सब सर्वांगीण हाथी के स्वरूप से अनभिज्ञ ही हैं, जिस ज्ञान का आग्रह करके परस्पर विरोधी भावों को वे लोग उत्पन्न करते हैं, वह ज्ञान उस महान करिवर के एक अंग का अनुमानिक ज्ञान है। ठीक इसी प्रकार से परब्रह्म परमात्म विषयक ज्ञान की विविधता को समझना चाहिये। परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान के विषय में जो वह कहते हैं, कि परब्रह्म केवल निर्गुण, निराकार, निर्विशेष हैं, वे परमात्मा के अधूरे ज्ञान का ही अवलम्बन लेकर वाद-विवाद में अपने मस्तिष्क का अपव्यय करते हैं और जो केवल परब्रह्म को सगुण, साकार, सविशेष ही बतलाते हैं वे भी प्रथम पक्ष के आग्रही लोगों के ही समान अधूरे ज्ञान के अधिकारी हैं।

परब्रह्म परमात्मा एक साथ निर्गुण (गुणातीत) और सगुण (दिव्य कल्याण गुणगण निलय) है क्योंकि वह परस्पर विरोधी धर्म और गुणों का आश्रय है, इसलिये हे वत्स! वह निर्गुण, निराकार, निर्विशेष भी है तथा सगुण, साकार, सविशेष

भी है, और न केवल निर्गुण, निराकार, निर्विशेष है, न केवल सगुण साकार, सविशेष है, ये उभयपक्षीय परमात्म विषयक सिद्धान्त परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान के विशेषण हैं, वे इन दोनों विशेषणों के आश्रय और इनसे परे सर्वथा विलक्षण हैं। "इदमित्थं" कह कर निरूपण करना मनसागोचर के विषय में कैसे संभव हो सकता है। वाक् का वायु बहुत चलकर भी उनका स्पर्श करने के बहुत प्रथम अनन्त दूरी शेष रहने से श्रमित होकर लौट आता है अतएव उस परब्रह्म परमात्मा के एक विशेषण (एक अंग) का दृढ़ निश्चय करके तदनुसार ब्रह्म के ज्ञान का अभिमान मस्तक में ढोना ब्रह्म-बोध का परिचायक नहीं है। हां ! यह वार्ता सर्वथा सत्य है कि वेद, इतिहास, पुराण पठित परमात्म विषयक विशेषणों को एकत्र करके पुरुषोत्तम भगवान के स्वरूप का निरूपण किया जाय तो वह परब्रह्म के स्वरूपानुसार पूर्ण बोध का हेतु अवश्य होगा फिर भी परब्रह्म परमेश्वर की अनंतता के स्मरण से मैंने ब्रह्म का पूर्ण बोध प्राप्त कर लिया है। ऐसा नहीं कह सकते। उपर्युक्त दृष्टांत में हाथी का सही स्वरूप समझने के लिए उसके सर्वांगों को एकत्र कर अर्थात अन्धों के स्पर्श ज्ञान से जाने हुये सब अंगों को हाथी के ही समझ कर यदि हाथी का वर्णन किया जाय तो सांकेतिक सही ज्ञान उसका अंधों को भी प्राप्त हो सकता है अन्यथा वाद विवाद की बीमारी मोल लेकर कष्ट का अनुभव करना ही हाथ लगेगा इसलिए ब्रह्म-विद सदगुरु की बताई हुई सांकेतिक भाषा के अनुसार ब्रह्म बोध करना ही श्रुति का सिद्धान्त है।

वत्स ! जिसे निर्गुण, निराकार, निर्विशेष सुधी पुरुष कहते हैं, उसी को सगुण, साकार, सविशेष कहते हैं। तत्वदर्शी सभी ब्रह्मविद वरिष्ठों की यह मान्यता समवेत है, जो श्रुति सिद्धान्त के सर्वथा अनुकूल है।

शिष्य :–

हे अज्ञानान्धकार के विनाशक सूर्य ! निर्गुण, निराकार ब्रह्म और सगुण साकार ब्रह्म एक ही है, यह बोध हृदय देश में आप श्री की कृपा से सदा के लिए स्थिर हो गया है किन्तु दास के हृदय में यह जिज्ञासा उत्पन्न हो रही है कि निर्गुण ब्रह्म के उपासक, सगुण ब्रह्म के आनन्द को और सगुणोपासक निर्गुण ब्रह्म की स्थिति व आनन्द को सहज ही प्राप्त कर सकते हैं या नहीं? तथा ब्रह्म के इन युग विशेषणों के तारतम्य विषयक वाणी का विसर्ग भी श्री मुख से श्रवण करने की अति अभिलाषा उर के कोष में संस्थित है, अस्तु कृपा–सिन्धु के कृपा सीकरांश पाने की प्रतीक्षा में सेवक सामने उपस्थित है।

गुरुदेव :–

वत्स ! जिस परम तत्व की उपलब्धि निर्गुण–ब्रह्म के उपासक किया करते हैं, उसी अद्वय तत्व की संप्राप्ति सगुणोपासक किया करते हैं किन्तु साधन काल में निर्गुणोपासकों को बड़ी कठिनाई व क्लेश सहन करके ही साध्य की संप्राप्ति होना संभव है। विघ्नों से भरा मार्ग बार बार पतन का हेतु होता है, इसके विपरीत सगुणोपासक सहज ही सुख का समनुभव करते हुए पूर्णतम परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान को

प्राप्त कर लेते हैं, क्योंकि वे अपने योग-क्षेम की चिन्ता छोड़कर परब्रह्म परमेश्वर पर निर्भर रहते हैं। उनके सर्व समर्पित जीवन के उपाय, उपेय पुरुषोत्तम भगवान ही रहते हैं इसलिए वे परमात्मा के द्वारा परमात्मा को शीघ्रातिशीघ्र उसी प्रकार प्राप्त कर लेते हैं, जैसे घुटनों के बल चलकर अपनी ओर आते हुए शिशु को देखकर वात्सल्य भाव से भरे माता-पिता स्वयं आगे चलकर उसे अपने अंक में ले लेते हैं और बच्चे के मनचाहे अट्टालिकादि स्थानों में प्यार करते हुये गोद में लिये लिये विहार कराते हैं। निर्गुण ब्रह्म के उपासक, ब्रह्म स्वरूप भावातीत भगवत सत्ता में एकीभूत स्थित होकर अमृतत्व की प्राप्ति तो कर लेते हैं किन्तु भावातीत स्थिति अर्थात केवलीभूत होने के कारण उन अमृत स्वरूप परब्रह्म परमात्मा के अमृतानंद की अनुभूति नहीं कर पाते अर्थात सगुण साकार स्वरूप जो परब्रह्म परमात्मा का विकसित स्वरूप है, नहीं देख पाते और उसके आनन्द की अनुभूति से उन्हें वंचित ही रहना पड़ता है। सगुणोपासक परब्रह्म परमात्मा के दर्शनाह्लाद को प्राप्त कर ब्रह्मानन्द से शतगुणे सुख की अनुभूति करते हैं तथा पुरुषोत्तम भगवान से पृथक अपनी स्थिति भी नहीं पाते अर्थात अभेदत्व को प्राप्त कर लेते हैं, निर्गुण ज्ञान व निर्गुण ब्रह्म स्थिति उनसे अदृश्य नहीं रहती जैसे हीरा प्राप्त हो जाने पर हीरे की कांति का दर्शन स्वाभाविक रहता है। वे भगवत स्वरूप हो जाते हैं किन्तु मायातीत भगवान में स्थित रहने पर भी अमृत स्वरूप भगवान का आस्वाद लेने की योग्यता उनमें बनी रहती है। अमृत होकर अमृतानंद की अनुभूति करते रहते हैं। उपर्युक्त

वार्ता का परिशीलन करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि सगुणाराधक, निर्गुणोपासक की स्थिति सहज ही प्राप्त कर लेते हैं और ब्रह्मानन्द से अति विलक्षण भगवतानंद का आस्वाद लेकर अचिन्त्य, अनिर्वचनीय और अनंत आनंद की अनुभूति करते हैं परन्तु निर्गुणोपासक ब्रह्म स्वरूप की सत्ता में समाविष्ट होकर सगुणोपासक के रसानंद की अनुभूति से अछूते ही रहते हैं क्योंकि सगुण ब्रह्म में वे लोग हेय दृष्टि रखकर तद्दर्शन, तत्कैंकर्य, और तद्भक्ति की कामना ही नहीं करते इसलिये ब्रह्मसत्ता (ब्रह्मकान्ति) में समाविष्ट हो जाते हैं।

शिष्य :–

प्रभो ! आप श्री की सम्पादित वार्ता के अनुसार सगुणोपासना सरल, सुखप्रद और निर्गुण ब्रह्म की उपासना पद्धति को न अपनाये हुये भी निर्गुण ब्रह्म की स्थिति व ज्ञान को सगुणोपासक के अधिकार में बिना श्रम के लाने वाली है, यह ज्ञान निश्चयात्मिका बुद्धि का विषय बनकर स्थिर हो गया है।

गुरुदेव :–

वत्स ! इस वार्ता के तथ्य को समझकर तदनुसार परमार्थ का दर्शन करना ही मनीषियों का करणीय कृत्य है। पृथ्वी को अपने अधिकार में कर लेने से वहाँ का आकाश स्वयं सहज ही अपना हो जाता है, अधिकारी दोनों का उपयोग स्वेच्छानुसार करने में स्वतन्त्र

हो जाता है, इसके विपरीत केवल आकाश स्वाधीन कर लेने से पृथ्वी पर अपना अधिकार नहीं हो सकता वस्तुतः बात ऐसी ही है, निर्गुण ब्रह्म-बोध मात्र से पूर्ण ब्रह्म-बोध अधूरा ही रहता है क्योंकि परब्रह्म परमात्मा के परावर स्वरूप में अभेदत्व का बोध ही बोध है, सगुण ब्रह्म के बोध से निर्गुण ब्रह्म का बोध छिपा नहीं रह सकता क्योंकि सगुण ब्रह्म के बिना निर्गुण ब्रह्म का बोध होना दुर्लभ ही नहीं अपितु अशक्य है। मान लो कोई प्राणी, पदार्थ नहीं है तो निर्गुण व्यापक ब्रह्म को कौन जानेगा, ब्रह्म का प्रयोजन क्या रहेगा? ब्रह्म क्या है? ब्रह्म औपाधिक है या निरुपाधिक? इत्यादि बातों को सगुण-साकार के द्वारा उसी प्रकार से जाना जा सकता है जैसे पुष्प के द्वारा उसकी गंध को, साकार अग्नि के द्वारा अग्नि की ऊष्मा को और मधुर वस्तु के द्वारा उसकी मधुरता को। वत्स! जैसे सूर्य सब जगह प्रकाश कर रहा है किन्तु उसका प्रतिबिम्ब शीशे पर ही पड़ता है, उसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा पूर्ण है, सब जगह है परन्तु उसका प्रतिबिम्ब मनीषियों के सूक्ष्म बुद्धि पर ही पड़ता है, जिसके द्वारा वे परमात्मा के स्वरूप को तत्वतः बोध का विषय बना लेते हैं।

शिष्य :-

प्रभो! ब्रह्म के सगुण और निर्गुण स्वरूप दोनों युगपद रहते हैं कि पृथक-पृथक? इस संशय का शमन आपकी भगवती भास्वती कृपा से हो जाय ऐसी प्रार्थना नाथ के श्री चरणों में समर्पित है।

गुरुदेव :-

वत्स ! ब्रह्म के दोनों स्वरूप उसी प्रकार से समझो जैसे सूर्य और सूर्य का प्रकाश पुंज ! सूर्य न हो तो प्रकाश पुंज कहाँ से हो? प्रकाश न हो तो सूर्य कहाँ है, कैसा है, कौन जाने? वस्तुतः जैसे सूर्य मण्डल (प्रकाश मंडल) को भेदकर जाने से ही सूर्य भगवान का दर्शन शास्त्रानुकूल संभव है, उसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म को, जो सगुण ब्रह्म के देह की कान्ति का प्रकाश है या जिसके ज्ञान का आश्रय सगुण ब्रह्म है, भेदकर ही ब्रह्म के सगुण साकार का दर्शन होना सम्भव है। अब तुम समझ गये होगे कि जैसे सूर्य और सूर्य का प्रकाश विचार करने पर एक ही है और साथ-साथ रहते हैं, उसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म एक ही अद्वय तत्व के विशेषण हैं और साथ-साथ रहते हैं, जो प्रकाश पुञ्ज है वही सूर्य है और जो सूर्य है, वही प्रकाश का स्वरूप है।

शिष्य :-

हे सद्गुरु देव ! सगुण ब्रह्म में साधन की सुगमता और सुख की आत्यन्तिकता विद्यमान है, जिसे जानकर साधक, साध्य विषय को सहज संप्राप्त कर सकेगा किन्तु इस विषय में युक्तियों और दृष्टान्तों के द्वारा कुछ और प्रकाश डालने की कृपा हो।

गुरुदेव :-

वत्स ! साधन दृष्टि एवं आत्यन्तिकानन्दानुभूति का

विचार करते हुये अशक्तिक (निर्गुण) ब्रह्म से सर्व शक्तिक सगुण ब्रह्म की उपासना ही श्रेष्ठ है जैसे सुवर्ण की शिला श्रेष्ठ तो है किन्तु उसे शिर में वहन करने से अधिक अच्छा यह है कि वजन और कस में कमी न रखकर उस सोने के शिर, कर्ण, कंठ, हृदय, कटि और पैर के आभूषण बनाकर धारण किये जाँय, जिससे शिर भार से पीड़ित होने से बच जायेगा और नखशिखान्त अलंकार के धारण करने से शोभा का संवर्धन होगा तथा कीमत की भी कमी न होगी। "आम के आम और गुठलियों के दाम" वाली कहावत चरितार्थ होगी। इसलिये सुधीपुरुष सगुण-साकार की उपासना में निरत रहकर आत्यान्तिक अमृतानन्द की अनुभूति किया करते हैं। द्वादश अध्याय श्रीमद्‌भगवत गीता में भगवान कृष्ण ने सगुणोपासना को ही सुगम और सुखमय कहा है। सगुण ब्रह्म की उपासना से निर्गुण ब्रह्म का बोध छिपा नहीं रह सकता इसके विपरीत निर्गुण ब्रह्म के अधिकारी सगुण ब्रह्म के दर्शनाह्लाद से वंचित ही रहते हैं।

शिष्य :-

प्रभो ! अशक्तिक-शक्तिक और निर्विशेष-सविशेष-विशेषण-विशेष्य ब्रह्म के साथ संयुक्त करने से वेदज्ञ कौन सा अर्थ प्रकट करते हैं, समझाने की कृपा हो।

गुरुदेव :-

वत्स! निर्गुण-निराकार ब्रह्म को अशक्तिक ब्रह्म कहते हैं क्योंकि शक्ति बीज रहते हुये भी कुछ करने न करने एवं

अन्यथा करने में असमर्थ बने रहना ही उसका स्वरूप है, वह ब्रह्म न देखता है न सुनता है न रस ग्रहण करता है, न स्पर्श करता है और न गंध ग्रहण करता तथा न वह चलता न बैठता, न ग्रहण करता न बोलता, न कोई कर्म करता, न उसका कोई रूप न कोई चेष्टा, किंबहुना वह अपने को भी नहीं जानता। जैसे भाप में पानी तो रहता है किन्तु उससे लोग जल सम्बन्धी लाभ नहीं उठा सकते वह अदृश्य निर्गुण और निराकार ही रहता है, उसी प्रकार अशक्तिक निर्गुण ब्रह्म के विषय का बोध हृदयंगम कर लो। सगुण साकार ब्रह्म अचिन्त्य और अनंत शक्ति सम्पन्न अर्थात सर्व सामर्थ्यवान सदा बना रहता है इसलिए उसे शक्तिक कहते हैं, जैसे प्रकट जल, जल के सारे गुणों को धारण करता हुआ सबको सुलभ और सबका पोषक सर्वदा बना रहता है, उसी भाँति सगुण ब्रह्म के विषय का बोध अपने हृदय में स्थित कर लो। भाप और सलिल दोनों एक ही तत्व के स्वरूप और विशेषण हैं अस्तु तत्वतः अशक्तिक और शक्तिक दोनों एक ही हैं। हां! उपर्युक्त कार्यशालिता में अशक्तिक और शक्तिक की संज्ञा अवश्य प्राप्त है।

निर्गुण ब्रह्म को निर्विशेष और सगुण ब्रह्म को सविशेष कहते हैं क्योंकि निर्गुण ब्रह्म में नाम, रूप, लीला, धाम की विशेषता नहीं होती वह शून्य सा है, अविकसित है, इसके विपरीत सगुण ब्रह्म में नाम, रूप, लीला, धाम का स्वरूप पूर्ण विकसित रहता है अर्थात अनन्त संज्ञक रहता है। अविनाशी मनसागोचर, अमृतमय, प्रकाशमय, विज्ञानमय, आनन्दमय, मंगलमय, रसमय, देही-देह-विभाग रहित सच्चिदानंदमय,

सर्वशेषी, सर्वरक्षक और सर्वभोक्ता होता है, जिसमें सृष्टि के सृजन संरक्षण और संहार की लीला निरन्तर चलती रहती है, अपनी अचिन्त्य स्वरूपाशक्ति, जीवशक्ति और माया शक्ति के साथ वह अपने में, अपने द्वारा अपने ही में विहार करता रहता है, इसलिए सगुण ब्रह्म को सविशेष कहा जाता है। जैसे कमल का बीज निर्विशेष और विकसित पुष्प सविशेष है। फूल में भी बीज होता है वैसे ही सगुण ब्रह्म में ही निर्गुण ब्रह्म प्रतिष्ठित रहता है अर्थात सगुण ब्रह्म ही, ब्रह्म के निर्गुण अव्यय अमृत आदि नामों का आश्रय है। सगुण ब्रह्म की देह कांति ही निर्गुण ब्रह्म कही जाती है। सर्व व्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वात्मा, सर्वस्वरूप, अद्वय तत्व ही परब्रह्म, परमात्मा और भगवान के नाम से अभिहित होता है, एक ही तत्व को स्थिति भेद से जैसे भाप, ओला वारि कहते हैं परन्तु भाप और ओला शब्द विचार करने पर मूलतः जल से ही अपनी संज्ञा पाते हैं और जल से कोई अलग तत्व नहीं होते उसी प्रकार परब्रह्म और परमात्मा नाम मूलतः सगुण ब्रह्म (जिन्हें भक्त भगवान कहते हैं) के आश्रय से ही प्रतिष्ठित है, जो सगुण ब्रह्म से पृथक नहीं रह सकते इसलिए सभी विशेषणों को लेकर ही परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान का पूर्ण बोध होना सम्भव है। अर्थात निर्गुण सगुण आदि विशेषणों में पृथक-पृथक एक-एक विशेषणों को लेकर चलने से अद्वय तत्व का बोध अधूरा ही रहता है।

शिष्य :-

प्रभो! कोई कोई कहते हैं कि निर्गुण ब्रह्म ही भक्तों के

कार्य के लिए सगुण स्वरूप होता है अतः सगुण औपाधिक है और आप श्री का कथन है कि सगुण ब्रह्म की देह कान्ति ही निर्गुण ब्रह्म है, वही ब्रह्म आदि परमात्मा के नामों का आश्रय है अतः इस संशय को शमन करने की कृपा प्राप्त करने का यह दीन दास आपका भिक्षुक है।

गुरुदेव :–

वत्स! जब अनन्य प्रयोजन दर्शनाभिलाषी भक्त प्रकाश पुञ्ज (निर्गुण ब्रह्म) के अनुभव से संतृप्त नहीं होता तब वह प्रार्थना करता है कि हे प्रभो! दुष्प्रेक्ष आपके श्री अंगों की तेज राशि से आपका श्री मुख ढका हुआ है अस्तु– हे भक्त वाच्छाकल्पतरू आप उस हिरण्यमय (तेजोमय) ढकने को हटा दीजिए अर्थात अपने अंगों से निकलती हुई चकाचौंध डालने वाली किरणों को समेट लीजिए ताकि ब्रह्म आपके आनन्दमय सच्चिन्मय स्वरूप का निरावरण दर्शन कर सकें। भक्त की प्रेम प्रार्थना श्रवण कर परम प्रभु अपनी देह से अभिन्न अपने प्रकाशपुञ्ज को उसी प्रकार समेट लेते हैं जैसे सूर्य अपनी किरणों को अपने ही में लीन कर लेते हैं, तब भक्तों को सगुण साकार के सुखावह स्वरूप का साक्षात्कार उसी प्रकार होता है जैसे किरणों को अन्तर्हित कर लेने पर सूर्य के सौम्य वपु का दर्शन उनके परिकरों को, इसलिए कहा जाता है कि पहले अनन्त प्रकाश का दर्शन हुआ पुनः उसी प्रकाश के बीच सुन्दर स्वरूप का दर्शन मिला और उस दुष्प्रेक्ष प्रकाश का आवरण हट गया अर्थात प्रकाश ही भगवत स्वरूप हो गया। वत्स! यही निर्गुण से सगुण होना है। बीज में यद्यपि वृक्ष

अन्तर्हित है किन्तु दिखाई नहीं पड़ता, उसी बीज से बीजारोपण के द्वारा वृक्ष का दर्शन सुलभ हो जाता है, अल्पज्ञ कहते हैं कि बीज से वृक्ष प्रकट हुआ किन्तु विचारक लोगों की यही मान्यता है कि वृक्ष के बिना बीज की उत्पत्ति और पहचान असंभव है, कोई भी बीज किसी वृक्ष का फल ही है।

वत्स! वृक्ष और बीज का अन्योन्य सम्बन्ध है तत्वतः दोनों एक ही हैं, इसी प्रकार निर्गुण-सगुण एक ही अद्वय तत्व के विशेषण हैं। एक दूसरे के बिना प्रत्येक की पृथक-पृथक स्थिति नहीं हो सकती। प्रकाश, बिना प्रकाशवान के अदर्शित ही रहेगा और न प्रकाशवान, बिना प्रकाश के किसी के दृग शक्ति का विषय बन सकेगा। इतना अवश्य सत्य है कि अगर प्रश्न किया जाय कि प्रकाश प्रथम है कि प्रकाशवान? उत्तर देना सहज समझ का विषय न होगा। वत्स! जब से प्रकाशवान है तब से प्रकाश है और जब से प्रकाश है तब से प्रकाशवान। ये दोनों एक और युगपद हैं परन्तु प्रकाश प्रकाशमान के रूप की जोत्स्ना है जो रूप से अभिन्न है किन्तु लोक में यही कहा जायेगा कि यह प्रकाश अमुक का है। इसी प्रकार सच्चिदानन्दात्मक सगुण ब्रह्म की शरीर कान्ति ही निर्गुण ब्रह्म है, सगुण ब्रह्म के बिना निर्गुण की पहचान और स्थिति असम्भव है। हाँ! यह सर्वदा अपने स्मृति पटल में अंकित रखना कि दोनों अभिन्न और एक ही अद्वय तत्व के विशेषण हैं। दोनों को एक करके जानना ही बुद्धि का वैशद्य है, जो सगुण है वही निर्गुण है और जो निर्गुण है वही सगुण है, विशेषण भी वही और विशेष्य भी वही है।

शिष्य :–

प्रभो ! सगुण-निर्गुण की तरह, साकार-निराकार भी ब्रह्म के विशेषण ही होंगे किन्तु इनमें क्या तारतम्य है। समझाने की कृपा हो।

गुरूदेव :–

वत्स ! जैसे अग्नि की आकृति तो दिखाई देती है किन्तु उसकी ऊष्मा की नहीं, अस्तु अग्नि साकार हुआ और उसकी ऊष्मा निराकार हुई परन्तु अग्नि बिना ऊष्मा के नहीं रहता और ऊष्मा अग्नि में ही अन्तरभुक रहती है। पुष्प और गन्ध कहने को तो दो, पर हैं एक इसी प्रकार साकार और निराकार को समझो। कहने को दो हैं किन्तु हैं एक।

शिष्य :–

प्रभो ! सगुण साकार ब्रह्म का वपु प्रकृति विनिर्मित होता है या अप्राकृत ? यदि जगत प्रसविनी माया से ही उत्पन्न होता है तो फिर सगुण ब्रह्म अमायिक कैसे हो सकता है?

गुरूदेव :–

वत्स! सगुण साकार ब्रह्म का शरीर सच्चिदानन्दमय होता है, जिस तत्व का शरीरी, उसी तत्व का शरीर अर्थात देही-देह विभाग रहित सत् स्वरूप, चिद् स्वरूप, आनन्द स्वरूप होता है जैसे स्वर्ण से बने सर्प के पुच्छ, शिर आदि सब अंग स्वर्ण के ही होते हैं, चीनी की गुड़िया में सब ओर

सर्व अंगों में चीनी-चीनी ही होती है, लकड़ी के खिलौने में, लकड़ी-लकड़ी ही होती है, सूर्य में जैसे प्रकाश ही प्रकाश होता है, उसी प्रकार सगुण साकार ब्रह्म के अंगी-अंग सब सच्चिदानन्दमय ही होते हैं। यदि सच्चिदानन्द भगवान सच्चिदानन्द अंग वाले हैं, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, जब एक नट बाजीगर स्वयं ज्यों का त्यों रहता है और उसकी बाजीगरी की रची खेल-सामग्रियाँ अनेक प्रकार की होती दिखाई देती हैं, वैसे सगुण साकार परब्रह्म परमात्मा स्वयं अमायिक देही-देह विभाग शून्य सच्चिदानन्दमय शरीर सम्पन्न होता है और उसकी संकल्प संभवा सृष्टि उसके प्रकृति (शक्ति) का कार्य होती है, जो शरीरी और शरीर (चेतन-जड़) के द्वारा विभाग युक्त अनुभव का विषय बनती है।

शिष्य :-

हे अज्ञान विनाशक मेरे सद्‌गुरुदेव ! आपकी अनुकम्पा से यह भली भाँति समझ में आ गया कि पूर्णातिपूर्ण परब्रह्म परमात्मा पुरुषोत्तम भगवान सच्चिदानन्दमय विग्रहवान है। उनके शरीर शरीरी में कोई भेद नहीं, उनकी काय सम्पत्ति अर्थात् अनन्त सौन्दर्य, माधुर्य, सौकुमार्य, सौष्ठव, लावण्य,, मन-मोहकत्व, लालित्व, सौगन्ध, कोमलत्व, वशीकरणत्व आदि सब सच्चिदानन्दमय होते हैं, एवं उनके अनन्तानन्त दिव्य गुण कल्याण निलय सच्चिदानन्दात्मक होते हैं, उनके दिव्य देह का प्रकाश जो उनसे भिन्न नहीं है, सच्चिदानन्दमय ही होता है, उसे ही निर्गुण ब्रह्म कहते हैं, जहाँ सोऽहस्मीति वादी तथा कैवल्यकामी योगी समुदाय प्रवेश कर तल्लीन हो

जाते हैं।

गुरुदेव :-

वत्स! तुम्हारी सूक्ष्मदर्शिनी एवं परमार्थ स्वरूपिणी बुद्धि का वैशद्य देखकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है, जी चाहता है कि अपना सर्वस्व तुम्हें समर्पण कर दूँ।

शिष्य :-

प्रभो! सद्गुरुदेव के कृपा प्रवाह से सिंचित यह अज्ञानी आपका सेवक कृत-कृत्य हो गया। हाँ, नाथ! यह बतलाने की कृपा करें कि सगुण-साकार ब्रह्म किसी देश विशेष में निवास करते हैं कि केवल भक्तों के भाव-प्रदेश में।

गुरुदेव :-

वत्स! सच्चिदानन्दमय परव्योम में सच्चिदानन्दमय धाम है, जहाँ सच्चिदानन्दमय परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान अपनी सच्चिदानन्दमयी अचिन्त्य, अनादि एवं आह्लादिनी सर्व समर्था स्वरूपा शक्ति के साथ सच्चिदानन्दमय पीठ में सर्वदा एक रस स्थित रहते हैं, युगपद निर्गुण-सगुण, निर्विशेष-सविशेष, सूक्ष्म-स्थूल, सत-असत, कारण-कार्य, पर-अवर इत्यादि विशेषणों के आश्रय हैं तथा इनसे परे भी हैं। ये भगवान सत्यकाम, सत्य-संकल्प हैं, अपहत पाप्मा, विज्वर, विशोक, विमृत्य (अमृत) और क्षुधा प्यास से रहित हैं, ये ही भगवान वेद-वेद्य रस स्वरूप हैं, ये ही परात्पर स्वरूप हैं। ये ही विश्व, तेजस्, प्राज्ञ, परमात्मा हैं, जो जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयावस्था के विभु हैं, इन्हीं को श्रुतियों ने चतुष्पाद के नाम से कहा है,

ये ही सब प्राणियों के हृदय में अंगुष्ठमात्र शरीर से निवास करने वाले सबके अन्तर्यामी हैं, ये ही मायापति, हृषीकेश तथा उरप्रेरक हैं, ये ही पर व्यूह, विभव अन्तर्यामी और अर्चावतार रूप से सर्व सुलभ होते हैं। ये ही पुरुषोत्तम भगवान, व्यापक व्याप्य स्वरूप से संप्रतिष्ठित हैं। सबके आदि, मध्य और अन्त में ये ही सर्व समर्थ प्रभु संप्रतिष्ठित हैं किन्तु इनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है, इसी से ये अनन्त संज्ञक हैं, सब पर ईशन करने वाले सर्व स्वतन्त्र सर्वेश्वर हैं। ये ही प्रभु दिव्यातिदिव्य अनन्तानन्त कल्याण गुणों के निलय हैं। जिससे इन्हें सगुण कहते हैं और हेय गुणों से सर्वथा रहित तथा गुणातीत होने के कारण निर्गुण भी कहे जाते हैं। सत्, रज, तम, त्रिगुण इन्हीं से जगल्लीला के लिये उत्पन्न होते हैं, किन्तु आप स्वयं गुणातीत हैं, ये ही प्रभु काल कर्म, स्वभाव गुण भक्षक हैं। ये ही सर्व नियन्ता, सर्वेश्वर, सर्वात्मा, सर्वदृष्टा, सर्वान्तर्यामी, सर्वस्वरूप, सर्वाधार, सर्वभुक्, सर्वशेषी, सर्वलोक शारण्य, सर्व सुहृद, सर्वसाक्षी, सर्वगति, सर्वपर, सर्वकारण, सर्वकार्य, सर्वप्रिय, सबके सर्वविधिबन्धु, सर्वस्व किंबहुना अनन्तानन्त सर्व संसार के स्वरूप में ये ही संप्रतिष्ठित हैं। वत्स! युगपद परस्पर विरोधी सभी धर्मों के आश्रय होने से इन पुरुषोत्तम भगवान में एक साथ सभी परस्पर विरोधी गुण-धर्म स्वरूप संभव है, इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए और न अति प्रश्न करके तर्क के समुद्र में अवगाहन करना चाहिए।

जिस अक्षरातीत अच्युत धाम में प्रभु स्थित हैं वह धाम सर्वलोक की स्थिति का हेतु है, इन्हीं परब्रह्म परमेश्वर का नाम जो उनसे अभिन्न है, सबके नाम का हेतु है, इसी से

इनको सर्व नामा भी कहा जाता है और इन्हीं की सच्चिदानन्दमय रूप से सर्वलोकों के रूप की स्थिति है तथा इन्हीं की सच्चिदानन्दमयी लीला ही सर्वलोकों की चेष्टाओं अर्थात क्रियाकलापों का हेतु है। वत्स जो परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान पर-व्यौम में संप्रतिष्ठित है, वही प्रभु सूर्य की आत्मा हैं और वही सम्पूर्ण प्राणियों की आत्मा हैं, यह सम्पूर्ण जड़-चेतनात्मक जगत उनका शरीर है जो प्रभु वहाँ है वही प्रभु यहाँ है, जो यहाँ नहीं है वो वहाँ नहीं है और जो वहाँ नहीं है, वह यहाँ नहीं है इसलिए पर और अवर ब्रह्म में अभेद है अर्थात दोनों एक ही हैं। जैसे- जो जल समुद्र की गहराई में होता है, वही जल गगन चुम्बी लहरों में होता है।

शिष्य :-

प्रभो ! जब परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान दिव्य चिन्मय अप्राकृत धाम में संस्थित हैं तब प्राकृत संसार में भी वही स्थित हैं, यह कैसे सम्भव हो सकता है, समझाने की कृपा हो।

गुरुदेव :-

वत्स ! जैसे सूर्य भगवान सूर्य मण्डल में स्थित हैं और साथ ही त्रिभुवन में प्रकाश स्वरूप से व्यापक हैं, सभी जड़ चेतनात्मक प्राणि-समूहों के प्राणों से अपनी रश्मियों द्वारा सम्बन्ध जोड़कर सबको प्राण शक्ति प्रदान करते हैं, जलाशयों का जल शोषण कर जल भी बरसाते हैं। गर्मी प्रदान करते हैं और दर्पण या जलाशयों में प्राणियों को अपने प्रतिबिम्ब द्वारा अपने स्वरूप की वास्तविक झलक प्रदान करते हैं, जिसे देखने से उसी प्रकाश, उसी ताप, उसी चकाचौंधी का लोक

अनुभव करता है, जो सूर्य में स्थित हैं। सब प्राणियों की आँख में ज्योति स्वरूप में सूर्य ही अन्तर्यामितया स्थित है वैसे ही सच्चिदानन्दात्मक परव्योम में स्थित परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान अपनी शक्ति व अपने सहज स्वरूप से जड़ चेतनात्मक जगत में अन्तर्यामितया स्थित हैं तथा अपनी शक्ति व प्रेरणा से अनन्तानन्त ब्रह्माण्डों का नियमन करते हैं जैसे एक राजा अपनी राजधानी में रहता हुआ भी अपनी राजसत्ता से अपने सर्व राज्य में व्यापक होता है तथा नियाम्यक होकर सबका नियमन करने वाला स्वतन्त्र शासक होता है उसी प्रकार परब्रह्म परमेश्वर के विषय में भी समझने की चेष्टा करो।

शिष्य :–

हे प्रभो ! सगुण साकार अर्थात अवयव युक्त परब्रह्म परमात्मा में तथा परमात्म स्वरूप जड़-चेतनात्मक जगत में उन परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान की सच्चिदानन्दमयी सत्ता एवं व्यापकता कैसे स्थित रहती है।

गुरुदेव :–

वत्स ! जैसे शक्कर के खिलौने में अर्थात गुड्डा-गुड़िया, अस्त्र-शस्त्र, फल-फूल आदि में विविधरूपता तो देखी जाती है परन्तु चीनी की मिठास उन खिलौनों के अणु-अणु में पायी जाती है। चीनी के खिलौने खाने वालों को पूर्णतया इस तथ्य का अनुभव होता है। इसी प्रकार जगत में अनेकता का दर्शन अवश्य होता है किन्तु सभी प्राणी-पदार्थों के भीतर-बाहर कण-कण में एक सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा ही व्याप्त है इसलिए सारा का सारा जगत ब्रह्मात्मक है या यों कहिए कि

सबके शरीरी परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान हैं। जैसे सुवर्ण के सर्प में मुख पुच्छ पृष्ठ उदर आदि अंग सब सोने के ही होते हैं उसी प्रकार सगुण-साकार परब्रह्म परमात्मा के सर्व अवयव सच्चिदानन्दमय आत्म स्वरूप ही होते हैं साथ ही उनके व्याप्य-व्यापक भाव में कमी नहीं होती क्योंकि वे अचिन्त्य अतर्क्य और अनन्त शक्तिवान होने के कारण युगपद परस्पर विरोधी धर्मों एवं गुणों के आश्रय हैं। शरीर और शरीरी में भेद न होने के कारण प्राकृत एवं हेय गुणों का स्पर्श सगुण-साकार ब्रह्म में नहीं हो सकता जैसे आकाश में किसी प्रकार की मलिनता का स्पर्श असंभव है।

शिष्य :-

हे बोध स्वरूप सद्गुरुदेव! जो कहते हैं कि निर्गुण से सगुण उत्पन्न होता है अर्थात निर्गुण ब्रह्म का कार्य सगुण ब्रह्म है। अज्ञान मूलक है किन्तु इस विषय में और प्रकाश डालने की कृपा करें। इस विषय को दुबारा पूछने का कारण दास की अल्पज्ञता है।

गुरुदेव :-

वत्स! प्रथम कह चुके हैं कि जो निर्गुण है वही सगुण है, वही निर्गुण है; वह न किसी का कारण है और न किसी का कार्य है, वह ब्रह्म सदा एक रस स्वस्वरूप में स्थित रहता है उसके नित्य गुण आत्म-स्वरूप अर्थात आत्मा से अभिन्न होते हैं तथा उसका नित्य शरीर आत्म स्वरूप अर्थात

शरीर-शरीरी विभागरहित होता है और उसकी केलि (लीला) भी नित्य आत्म स्वरूपिणी होती है निष्कर्ष यह हुआ कि परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान के नाम-रूप-लीला और धाम चारों जब सच्चिदानन्दमय अप्राकृत होते हैं तब उनकी एकरसता में न्यूनता का अदर्शन ही होगा और विचार करने पर विचारक को परब्रह्म परमात्मा में कार्य-कारण के नित्य अभाव का दर्शन सहज ही सिद्ध होगा। वत्स ! अब समझ गये होगे कि निर्गुण से न सगुण होता है और न सगुण से निर्गुण की निष्पत्ति होती ।

शिष्य :–

प्रभो ! प्रथम आप श्री ने कहा है कि सगुण ब्रह्म की देहकान्ति ही निर्गुण ब्रह्म है, तो क्या इस कथन में सगुण से निर्गुण की उत्पत्ति नहीं सिद्ध होती?

गुरुदेव :–

वत्स ! कान्ति का अर्थ तेज है, तेज ही रूप है और रूप ही तेज है, रूप तेज को प्रकाशता है और तेज रूप को दृष्टिगोचर कराता है अस्तु जो रूप है वही कान्ति है और जो कान्ति है वही रूप है, अर्थात जो निर्गुण है वही सगुण है और जो सगुण है वही निर्गुण है, दोनों अभिन्न हैं किन्तु प्रकाश और सूर्य की भांति व्यवहारिक वाणी में समझने और समझाने के लिये उभयात्मक प्रयोग का प्रयोजन शास्त्रों एवं मनीषियों ने स्वीकार किया है।

शिष्य :-

प्रभो ! जब सगुण एवं निर्गुण दोनों एक ही हैं तब कोई अव्यक्तोपासना और कोई व्यक्तोपासना क्यों करते हैं तथा निर्गुण निराकार मतावलम्बी और सगुण साकार के अनुयायी पृथक-पृथक ब्रह्म का निरूपण कर परस्पर द्वेष और एक दूसरे की आलोचना एवं निन्दा क्यों करते हैं?

गुरुदेव :-

वत्स ! निर्गुण व सगुण किसी की भी उपासना करने से साधक परम प्राप्य परमार्थ वस्तु को प्राप्त कर लेता है क्योंकि इन दोनों साधनाओं के साधक असंसारी बनकर ही साधना प्रारम्भ करते हैं इसलिये उन्हें अमृतत्व की प्राप्ति हो जाना स्वाभाविक है किन्तु अनुभव में अन्तर होता है अर्थात निर्गुणोपासक अभेद और अमृत स्वरूप हो जाते हैं इसलिये अमृत के आस्वादानुभव से वंचित रहते हैं और सगुणोपासक अभेद और अमृत होकर भी भेद बनाये रखने के कारण अमृत के आस्वादन का अनुभव भी करते हैं । जैसे सूर्य और सूर्य का प्रकाश कहने को दो वस्तु हैं किन्तु विचार करने पर दोनों एक ही तत्व हैं यदि कोई केवल प्रकाश का ही इच्छुक एवं प्रेमी है तो उसे सौरमंडल के प्रकाश की सहज प्राप्ति हो जायेगी परन्तु सूर्य के सौम्य वपु का दर्शन अलभ्य ही रहेगा क्योंकि वह उसका इच्छुक नहीं है और जो सूर्य दर्शनाभिलाषी है, वह प्रकाश मण्डल को भेदकर सूर्य शरीर का दर्शन संभाषण सहज ही प्राप्त कर संतृप्त हो जायेगा, साथ ही प्रकाश का अभाव

भी उसे कभी नहीं हो सकता। मस्तिष्क के धनी निर्गुण, निराकार की उपासना करते हैं क्योंकि उन्हें बुद्धि की खुराक भली–भाँति प्राप्त होती रहती है और अन्ततः बुद्धि विवेक के द्वारा उस ब्रह्म का विचार करते–करते थककर अपना अस्तित्व ही खो बैठती है, तब कहा है कि ब्रह्म प्राप्ति हो गई। हृदय के धनी सगुण ब्रह्म की उपासना करते हैं और देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, आत्मा परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान को समर्पित कर उनके नाम, रूप, लीला, धाम के सच्चिदानन्दामृत का अनुभव, भगवत समर्पित करणों के द्वारा साक्षात करते हैं। या यों कहिए, परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान जिसे अपना सर्वांगीण आनन्द देना चाहते हैं, वह सगुण स्वरूप की आराधना करता है और जिसे अपने ज्ञानालोक में प्रवेश कर लेना चाहते हैं, वह निर्गुण स्वरूप का आराधक होता है। एक ही अद्वय–तत्त्व के आराधना प्रकार के वैभिन्न से परस्पर द्वेष, आलोचना और असूया करना आसुरी सम्पत्ति का सम्मान एवं संवर्धन करना तथा अपने लिये आसुर लोक के मार्ग का संशोधन करना है। ऐसे उपासकों पर भगवान दया करें।

शिष्य :–

हे बोध विग्रह सद्गुरुदेव ! सगुण ब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान परम धाम में, जो संप्रतिष्ठित हैं वे अवतार ग्रहण कर धराधाम में, भी अपनी सच्चिन्मयी लीला करते हैं, ऐसा सुना जाता है तो दोनों धाम के पुरुषोत्तम भगवान में क्या तारतम्य है?

गुरुदेव :–

वत्स! परमव्योम विराजित परब्रह्म परमात्मा पुरुषोत्तम भगवान का अवर विग्रह यह विराट जगत है, उसके मध्य भक्तों की भावना के पुष्टि के लिए एवं निज जनों के शोक–संताप शमन करने के लिए सर्व सुखावह स्वरूप से परब्रह्म पुरुषोत्तम प्रभु जब प्रकट होते हैं तब लीला काल में उनके दिव्य कल्याण गुणों का वैभव उसी प्रकार निखार और विस्तार को प्राप्त होता है जैसे सूर्य के सम्मुख रखे हुए दीपक को उठाकर अँधेरे गृह में रख देने से वह अधिक उपयोगी और प्रकाशक सिद्ध होता है। उनके अवतार काल की लीला भी वृहद विस्तार वाली और अतिशय आनन्द प्रदा उसी प्रकार सिद्ध होती है, जैसे अंकुरित पौधा, दल–फूल–फल समन्वित, सुरभित सर्वांगीण शोभा सम्पन्न सदुपयोगी वृहद वृक्ष का रूप धारण कर लेने पर सर्व सुखप्रद सिद्ध होता है। परम पद प्रतिष्ठित पुरुषोत्तम भगवान का जब धराधाम में अवतार होता है, तब परम पद शून्य नहीं हो जाता । वे अत्र–तत्र सर्वदेश, सर्वकाल, सर्वमें, सर्व स्थितियों में समान रूप से संप्रतिष्ठित रहते हैं इसलिये वहाँ हैं, यहाँ नहीं है अथवा यहाँ है, वहाँ नहीं है, ऐसा कहने से व्यापक ब्रह्म की व्यापकता में हानि हो जायेगी। पूर्ण ब्रह्म से पूर्ण निकालने पर भी वह पूर्ण ही शेष रहता है, इसलिये अवतार ग्रहण करने पर भी वह एक रस अत्र–तत्र युगपद संप्रतिष्ठित रहता है, जैसे एक दीप–ज्योति से हजारों दीप जला लेने पर भी वह आदि ज्योति ज्यों की त्यों जलती ही रहती है, वैसे ही एक से अनेक रूप होने पर

भी परम ज्योति स्वरूप सबका प्रकाशक परब्रह्म परमात्मा परव्योम में एकरस प्रकाशता है, उसके सच्चिदानन्दमय नाम, रूप, लीला और धाम में किचिंत न्यूनता नहीं स्पर्श करती। हां! यह बात सत्य है कि परब्रह्म परमात्मा पुरुषोत्तम भगवान की कोई भी अभिव्यक्ति अपने अनन्तत्व को स्वउदरी कृत्य करके ही किसी दर्शनाभिलाषी के दर्शन का विषय बनती है, क्योंकि सर्व समर्थ परम प्रभु अपनी अभिव्यक्ति में अपने अनन्तत्व का दर्शन कराने में इसलिये असमर्थ है कि वे अनंत हैं। जो सूक्ष्म स्थूल, सत-असत, कारण-कार्य, सगुण-निर्गुण और पर-अवर का विशेष्य है तथा इनसे परे भी जो अद्वय तत्व हैं, वही अवतार काल में लोगों के चर्म-चक्षुओं का विषय बनता है किन्तु अपनी योगमाया से समावृत्त अर्थात मानुषादि के खोल से आच्छादित रहने के कारण सब उसे पूर्णातिपूर्ण परब्रह्म नहीं समझ पाते, वही उस अद्वय आनन्द विग्रह को समझ पाता है, जिसे वह वरण करके अपने को समझा देता है। वत्स! वास्तविक वार्ता तो यह है कि वह जो है, जैसा है, क्या है, क्या नहीं है, क्या करता है, क्या नहीं करता है, इत्यादि बातों को कोई ब्रह्मादि देवता, ऋषि, मुनि, वेदवेत्ता यथार्थतः नहीं जानते, वह श्रोत, चक्षु, वाक्, मन, प्राण, बुद्धि के द्वारा जाना नहीं जा सकता इसलिये "वह ऐसा है" नहीं कहा जा सकता अतर्क्य, अचिन्त्य, अनिर्वचनीय, अगम्य अनादि और अनंत के विषय में आदि, मध्य और अन्त से युक्त तत्व क्या निर्णयात्मक विवेचन दे सकते हैं, हाँ, वह अनुभवगम्य अवश्य है इसलिये उसके अनुभवानन्द को प्राप्त करना प्राणियों का परम पुरुषार्थ

है। परब्रह्म परमात्मा पुरुषोत्तम भगवान की महिमा की इयत्ता स्वयं परब्रह्म परमात्मा नहीं पा सकते तो अन्य इतर ब्रह्मादिक देवता कैसे उन्हें करतल आमलकवत् जानने में समर्थ हो सकते हैं। श्रुतियाँ भी उन महाप्रभु का अन्त न पाने के कारण नेति-नेति उन्हें कह कर शान्त हो जाती हैं।

शिष्य :-

हे ज्ञान स्वरूप मेरे सद्गुरुदेव ! परब्रह्म परमात्मा साकार रूप से परम व्योम चिदाकाश में भी प्रतिष्ठित हैं और अन्तर्यामितया चराचर जगत के सभी प्राणी-पदार्थों में भी विराजते हैं यह कैसे? समझाने की कृपा हो।

गुरुदेव :-

भद्र ! जैसे सूर्य महदाकाश (भूताकाश) में सूर्य मण्डल के बीच विराजते हैं और सभी प्राणियों के शरीर में नेत्रेन्द्रिय बनकर नेत्र में ही स्थित रहते हैं और धूप के रूप में त्रिलोकी के अणु-अणु को प्रकाशित करते हैं, वैसे ही सर्व समर्थ परम प्रभु सच्चिदानन्दमय परव्योम में भी प्रतिष्ठित हैं और अन्तर्यामि रूप से सब प्राणियों में भी प्रतिष्ठित हैं, तथा जैसे कभी-कभी सूर्य की तपस्या करने वालों को सूर्य भगवान दर्शन देने भी आते हैं और आप स्वयं कभी-कभी किसी के यहाँ पुत्र रूप में भी प्रकट होते हैं, किन्तु आकाश मण्डल के सूर्य जैसे के तैसे बने रहते हैं, वैसे ही परमात्मा भी कभी-कभी धराधाम में अवतरित भी होते हैं और परम पद में भी युगपद रहते हैं, परन्तु उनके स्वरूप की कोई हानि नहीं होती क्योंकि परब्रह्म

पुरुषोत्तम भगवान सर्व समर्थ योगेश्वर और परस्पर विरोधी गुण और धर्मों के युगपद आश्रय हैं।

शिष्य :–

हे अखण्ड ज्ञानैक रस स्वरूप सद्गुरुदेव! परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान को कोई अपने इन्द्रिय का विषय नहीं बना सकता अर्थात वे नेत्रों से जैसे देखे नहीं जा सकते वैसे ही त्वकादि के अनुभव में नहीं आ सकते, ऐसा श्रुतियों का निर्देश है, केवल आत्मानुभव के योग्य हैं, इसमें आपका अनुभव व निश्चय क्या है?

गुरुदेव :–

वत्स! परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान की माया की यवनिका में उनका स्वरूप अवश्य अप्रत्यक्ष रहता है, जैसे कोई योगी अपनी इच्छा से अपनी शक्ति का प्रभाव प्रकट कर दर्शकों के बीच बैठा हुआ भी अन्तर्ध्यान प्रक्रिया द्वारा उन लोगों को नहीं दीख पड़ता किन्तु दूसरा सिद्ध योगी उसे देख लेता है अपने योग बल से, इसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा प्रत्येक देश काल में रहता हुआ भी कुयोगियों को नहीं दीख पड़ता और सुयोगियों के नेत्र से कभी ओझल होने की स्वयं सामर्थ्य नहीं रखता क्योंकि सुयोगी के सम्मुख की यवनिका परमात्मा ने स्वयं हटा ली है। वत्स! लीलामय पुरुषोत्तम भगवान की माया से स्वयं प्रभु की वास्तविकता को भी हँसी आने लगती है क्योंकि सही वास्तविकता तो यह है कि परब्रह्म परमात्मा कभी किसी काल में अप्रत्यक्ष न था, न है, और न रहेगा। ऐसा इसलिये कि

परमात्मा नित्य एक रस रहने वाला अद्वय तत्व है और सर्वत्र सर्वसमय, सबमें समान रूप से संप्रतिष्ठित है इसलिये पुरुषोत्तम भगवान को सदा एक रस प्रत्यक्ष देखना सहज और निरुपाधिक है और प्रत्यक्ष को अप्रत्यक्ष मानना कठिन, औपाधिक और माया का प्रावल्य है। माया ही, "है" को "नहीं" और "नहीं" को "है" करके दिखाती है अर्थात विपरीत ज्ञान को उत्पन्न कर जीव समुदाय को अहं और मम् के झूले में झुलाकर दुख में सुख की भ्रान्ति उत्पन्न करती है, जिससे जीव व्यामोह को प्राप्त कर स्वयं को, परमात्मा को, और माया को समझने में असमर्थ हो जाता है और चौरासी लाख योनियों में अर्थात् संसार चक्र में घूमता हुआ कर्म फलों को खा-खाकर संसारी सुख-दुख की अनुभूति किया करता है। वत्स ! प्रकृति सम्बन्ध से सम्बन्धित स्थूल इन्द्रियाँ परब्रह्म के साक्षात्कार में सदा असफल रहती हैं किन्तु अप्राकृत सम्बन्ध से सम्बन्धित अप्राकृत इन्द्रियाँ प्रभु कृपा से चिन्मयी दिव्यता पाकर परब्रह्म को देखने में सहज ही समर्थ हो जाती हैं - उदाहरण में श्री अर्जुन ने प्रभु कृपा से उनके विराट स्वरूप का दर्शन किया ही था।

शिष्य :-

प्रभो ! आप श्री परब्रह्म परमात्मा को नित्य प्रत्यक्ष कह रहे हैं, यह वार्ता अभी वस्तुतः हृदय देश में अपना स्ववास नहीं बनायी इसलिये इसे और गहराई से समझाने की अत्यन्त अनुकम्पा हो।

गुरुदेव :-

वत्स ! जो सत्य है, नित्य है, एक रस है, कहीं आना जाना जिसका असंभव है, जो सर्वत्र, सर्वकाल में, सबमें, और सबका है जिसका प्रकाश-सूर्य कभी अस्त नहीं होता जो सबके बाहर भीतर अणु-अणु में पूर्णतया विद्यमान है, जिसके अतिरिक्त अन्य अकिञ्चित है, उसको प्रत्यक्ष मानने, जानने और देखने में कौन आपत्ति विद्वानों के आड़े आ सकती है, अर्थात कोई नहीं, जो महतत्व से लेकर पञ्चभूत से विनिर्मित सारे संसार में अनेकानेक रूप धारण कर विराजमान हो रहा है उसे प्रत्यक्ष देखने में ब्रह्मविदों के सामने कोई विघ्नकारी स्थिति मुख नहीं दिखा सकती जैसे सोने के अनन्त आभूषणों में, मिट्टी के बने भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के बर्तनों में, रुई के धागे से बने विविध प्रकार के वस्त्रों में किसी योग्य ज्ञानी पुरुष की आँखें सोना, मिट्टी और रुई के अतिरिक्त उन आभूषणों, बर्तनों और वस्त्रों में, देखने के लिये सक्षम नहीं हो सकती। हाँ, अज्ञानी पुरुष को सोना, मिट्टी, वस्त्र न दिखाता हुआ अनेकानेक आभूषण, बर्तन और वस्त्र दिखाई पड़े और सोना, मिट्‌टी तथा रुई का अस्तित्व ही उनके मन से मिट जाय तो क्या किया जाय, अन्धे को आरसी में मुख न दिखाई पड़े तो नेत्र वाले उसके दुराग्रह को कैसे दूर कर सकते हैं। जल का ज्ञान रखने वाले ज्ञानीजन बर्फ में, भाप में, पानी को ही देखते हैं किन्तु अज्ञानी की आँखों का चश्मा ठीक न होने से, उन्हें जल न दीखे तो बिचारे क्या करें।

शिष्य :–

हे अखण्ड ज्ञान प्रदाता सद्‌गुरुदेव! ब्रह्म प्रतीति कैसे हो तथा उसके प्रत्यक्ष दर्शन की सहज दृष्टि कैसे प्राप्त हो! बलवती जिज्ञासा की पूर्ति करने की महान कृपा हो।

गुरुदेव :–

वत्स! ब्रह्मविद् वरिष्ठ ब्रह्म प्राप्त सद्‌गुरु की शरण ग्रहण कर उनकी सुश्रूषा सर्वविधि प्रीति पूर्वक करने में जिज्ञासु संलग्न हो जाय और अपनी सेवा से इतना प्रसन्न कर ले कि गुरुदेव परम प्रसन्न होकर स्वयं ब्रह्मोपदेश करने में बाध्य हो जाँय। जब जिज्ञासु आचार्य मुख से ब्रह्म जिज्ञासा की पूर्ति अर्थात ब्रह्मोपदेश श्रवण करे तो उसमें प्रत्यक्ष की तरह प्रतीति करे और सुरीति से श्रवण–मनन निदिध्यासन के साथ अभ्यास और वैराग्य में दृढ़ संकल्प हो जाय एवं शम–दम संतोष विचार परायण होकर दीर्घकाल तक निरन्तर आदर पूर्वक आचार्य पथ का अनुसरण करता रहे तो ब्रह्म की प्रतीति और दर्शन उसे साथ–साथ होने लगते हैं। पूर्व जन्म के अभ्यास से साधक की बुद्धि गुरु के उपदेश को बहुत शीघ्र ग्रहण करने में समर्थ होती है और विचार करते–करते उसी प्रकार सूक्ष्म और तीक्ष्ण हो जाती है जैसे सान में चढ़ाने से तलवार, तब वह संसार–भ्रम के वृक्ष को काटकर ब्रह्म ही ब्रह्म का दर्शन करता है। वैसे तो ब्रह्म स्वयं प्रत्यक्ष है। संसार को चेष्टित किये हुये सब पर स्वतन्त्र शासन कर रहा है, उसके भय से सूर्य तपता है, अग्नि जलती है, वायु गतिशील बना रहता है, चन्द्र शीतल प्रकाश देकर औषधियों को पुष्ट करता

है, जिसके भय से ब्रह्मादि सभी देवता दौड़-दौड़ कर अपना कार्य उसी प्रकार करते हैं जैसे शस्त्र उठाये हुये शक्तिशाली राजा को देखकर उसके कर्मचारी गण अपना-अपना कार्य कुशलता पूर्वक करने में तत्पर रहा करते हैं। जो प्राण का प्राण है, जीव का जीव है जिसकी शक्ति एवं प्रेरणा से श्रोत्र-चक्षु-वाक् आदि इन्द्रियाँ अपने कार्य करने में सक्षम हुआ करती हैं और जिसके शरीर में न रहने से मृतक संज्ञा लोगों को प्राप्त हो जाती है, वही ब्रह्म है जिससे यह दृश्य जगत उत्पन्न होता है, जिसमें रहकर जीता है और अन्त में जिसमें विलीन हो जाता है, वही ब्रह्म है। अस्तु ऐसे महा महिमावान सब ओर, सर्वत्र, सर्वसमय सबमें बाहर-भीतर प्रतिष्ठित सर्व समर्थ परब्रह्म परमात्मा पुरुषोत्तम भगवान को योगी लोग सहज ही देख लेते हैं किन्तु कुयोगियों को अति समीप प्रत्यक्ष रहते हुये भी दृष्टिगोचर नहीं होते।

शिष्य :-

हे प्रभो! जब ब्रह्म ही ब्रह्म सर्वत्र प्रत्यक्ष है तब वह दीखता क्यों नहीं?

गुरुदेव :-

वत्स! जैसे सूर्य भगवान प्रत्यक्ष उदित होकर अपने प्रकाश से संसार को प्रकाशित करते हैं किन्तु उलूक के नेत्रों का विषय नहीं बनते उसी प्रकार ब्रह्म सत्ता की सत्यता को स्वीकार न करके कामनाओं से कलंकित मन वाले संसारी मोह रात्रि में सोते रहते हैं, उनके लिए दिन को भी रात्रि बनी

रहती है इसलिए उन्हें ब्रह्म दर्शन अप्राप्त रहता है और न उन्हें ब्रह्म दर्शन की जिज्ञासा ही वरण करती। संसारी लोग विपरीत बुद्धि के शिकार बने रहते हैं, आश्चर्य है कि उन्हें अपने शरीर के भीतर रहने वाले प्रत्यक्ष चेतन का भी प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो पाता जबकि उसी से अन्तःकरण समेत ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ चेष्टित रहा करती हैं, जिसके न रहने से शरीर को शव कहा जाता है। अनात्मा शरीर को ही संसारी सर्वस्व समझते हैं और अनात्मा को आत्मा, दुख को सुख, अपवित्र को पवित्र और अनित्य को नित्य समझते हैं अर्थात प्रत्यक्ष मरने वाले, अनित्य, अपवित्र और दुख रूप अनात्मा शरीर को सत्य मानते हैं। आत्मा क्या है, उन्हें पता ही नहीं। संसारियों का स्वभाव है, 'है' को नहीं, और 'नहीं' को 'है' देखने का हो गया है इसलिये वे प्रत्यक्ष ब्रह्म को कैसे अपने नेत्र का विषय बना सकते हैं। परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान तो सबके भीतर द्रष्टा रूप से और बाहर दृश्य रूप से संप्रतिष्ठित हैं। उनके अतिरिक्त जगत्रय में कुछ भी नहीं है किन्तु अज्ञानी को ज्ञान न होने के कारण संसार ही संसार दृष्टि-पथ में आता है जिससे वे सदा संसार चक्र में ही परिभ्रमण किया करते हैं।

शिष्य :—

हे बोध स्वरूप मेरे गुरुदेव! जब सर्वत्र ब्रह्म सम एवं पूर्ण रूप से विद्यमान ही है तो बड़े-बड़े ब्रह्मविद भी सगुण-साकार ब्रह्म को अपने चर्म-चक्षुओं का विषय बनाने की इच्छा क्यों करते हैं?

गुरुदेव :-

वत्स! जैसे अग्नि काष्ट में अन्तर्यामि रूप से अप्रत्यक्ष और गृह में प्रत्यक्ष अग्नि के रहते हुए भी अग्नि के उपासक अवयव वाले अग्नि के दर्शन के इच्छुक होते हैं और वह सगुण साकार अग्नि देव दर्शन भी देते हैं। जल सब जगह है, किन्तु जलाभिमानी वरुण देवता भी इच्छुक उपासक को दर्शन देते ही हैं। वायु सर्वत्र है, परन्तु उनके साकार स्वरूप को जो देखना चाहते हैं, उन उपासकों को वे भी दर्शन देते ही हैं, उसी प्रकार ब्रह्म सर्वत्र हैं किन्तु बोध और अनुभव होते हुए भी जो भक्त उनके सगुण साकार स्वरूप का दर्शन करना चाहते हैं, उन्हें वे परब्रह्म परमात्मा अपने आनन्दमय सगुण साकार स्वरूप का दर्शन दया परवश होकर देते ही हैं। सर्वत्र ब्रह्म समान रूप से रहते हुये भी हृदय के धनी भक्त बिना सगुण साकार ब्रह्म के दर्शन से तृप्त नहीं होते, उन्हें आर्तिदशा वरण किये रहती है। ये विरह की अग्नि में जलते रहते हैं इसलिये वे अपने हृदय की जलन जुड़ाने के लिये एवं संतृप्ति के लिए इच्छा उसी प्रकार करते हैं जैसे नमकीन समुद्र के जल के रहते हुए भी नमक को पृथक देखने के प्रेमी इच्छान्वित होकर नमक को निकाल कर ही रहते हैं, मिश्री के प्रेमी रसीले ईख को प्राप्त कर उससे तृप्ति न रखते हुए मिश्री का निर्माण करते ही हैं, जल के प्रेमी बरफ से संतृप्त न होकर उसे जलमय बनाकर अपनी प्यास बुझा ही लेते हैं। वत्स ! पुरुषोत्तम भगवान की काय-सम्पत्ति हृदयवान भक्तों को निर्गुण निराकार का पूर्ण बोध एवं मान्यता रहते हुए

भी सगुण साकार के दर्शन की प्रेरणा देकर बाध्य कर देती है। इसलिए वे अपनी इच्छा का संवरण करने में असमर्थ रहते हैं।

शिष्य :–

प्रभो! जब यह संसार प्रत्यक्ष परब्रह्म स्वरूप ही है तब परब्रह्म को नदी, पर्वत, उपवन आदि नाना रूपों के आकार का मान लेने में कोई आपत्ति है क्या? जगत को ब्रह्म मानने वालों से कुछ लोग हँसी करते हैं कि इनका ब्रह्म पहाड़ जैसा, वृषभ जैसा होता है अस्तु इसके तथ्य पर प्रकाश डालने की कृपा हो।

गुरुदेव :–

वत्स! ब्रह्म–बोध न होने के कारण ज्ञानाभिमान का मात्र चोंगा पहरने वाले चाहे जो कहें, कोई आश्चर्य नहीं है, ज्ञानियों की दृष्टि से तो यह जगत ब्रह्म स्वरूप ही है। ऊन व रुई के कई रंग के छोटे बड़े विविध प्रकार के वस्त्रों का निर्माण होता है, मिट्टी के छोटे बड़े अनेकों प्रकार के बर्तन बनते हैं, स्वर्ण से अनेकों प्रकार के आभूषण विनिर्मित होते हैं, यह वार्ता किसी को अविदित नहीं है किन्तु यदि प्रश्न उठे कि ऊर्ण, रुई, मिट्टी और स्वर्ण का स्वरूप क्या है? तो ज्ञानवान पुरुष क्या कोई यह उत्तर देगा कि ऊर्ण बड़े–लम्बे चौड़े दुशाला के सदृश तथा रुई बड़ी जाजिम या दरी के समान और मिट्टी बड़े घड़े की भाँति एवं स्वर्ण बड़े मुकुट की तरह होता है, नहीं देगा। हाँ, अज्ञानी के लिये कुछ अघटित नहीं

है, जो कुछ कह दे। ऊर्ण, रुई, मिट्टी और स्वर्ण क्रमशः कम्बल, वस्त्र, बर्तन तथा आभूषण के अणु-अणु में पूर्णतः समाये हुए हैं परन्तु ऊर्ण, रुई, मिट्टी और स्वर्ण के स्वरूप का कोई छोटा या बड़ा आकार नहीं होता, ये सब सूक्ष्म और पृथ्वी तत्व के विकार हैं, ज्ञानी इन्हें कोई आकार देकर नहीं बतलाएगा। वह केवल अनुभव से ही उपर्युक्त पदार्थों का अनुमान करेगा। वत्स ! इसी प्रकार जगत पूर्णतः ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है जैसे रुई आदि के वस्त्रादि रुई से अन्य कुछ नहीं हैं किन्तु जैसे रुई, जाजिम धोती, कोट, कुर्ते की तरह नहीं होती वैसे ही ब्रह्म पहाड़, नदी, पशु-पक्षी, मनुष्य, देवता आदि की तरह नहीं होता। यही ज्ञान, ज्ञान है और सब अज्ञान है। हम जैसे रुई के वस्त्र को मिथ्या नहीं कह सकते वैसे ही संसार को मिथ्या नहीं कह सकते क्योंकि वस्त्र में रुई की भाँति जगत में ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, हाँ ! व्यर्थ ज्ञानाभिमानी जो कहें, उनके मुख में हाथ कौन रखे।

शिष्य :-

प्रभो ! परब्रह्म परमात्मा का परोक्ष ज्ञान और अपरोक्ष ज्ञान क्या है? समझाने की कृपा हो।

गुरुदेव :-

वत्स ! अट्ठाइस तत्वों को ब्रह्मा से लेकर चराचर ब्रह्म सृष्टि के सारे कार्यों में देखना और इन सारे सृष्टि के सारे विभिन्न व्यवहारों में एक परमात्म तत्व को अनुगत रूप

से देखना परोक्ष ज्ञान है, जिसे ज्ञान कहते हैं, जब सम्पूर्ण तत्वों से बने सृष्टिमय कार्यों में मात्र एक परम कारण स्वरूप परब्रह्म परमात्मा ही दिखाई दे, सारे तत्व व उनके कार्य न दीख पड़े अर्थात सारा दृष्य-अदृष्य परब्रह्म के उदर में विलीन होकर न दिखाई दे और ब्रह्म ही ब्रह्म दिखाई देने लगे, तब उसे अपरोक्ष ज्ञान (विज्ञान) कहते हैं। सरल अर्थ में यह है कि मिट्टी के बर्तनों में जब तक यह ज्ञान रहे कि यह अमुक बर्तन है, यह अमुक है, पर बने मिट्टी से हैं अर्थात इसमें मिट्टी है तब तक समझना चाहिए कि यह परोक्ष ज्ञान है और जब बर्तनों में बर्तन दृष्टि न रहे केवल मिट्टी ही मिट्टी है, यह दृष्टि सुदृढ़ हो जाय तब जानना चाहिए कि अब अपरोक्ष ज्ञान हो गया। ज्ञान केवल बुद्धि का वैशद्य है और विज्ञान आत्म-वैशद्य है अर्थात अहं सहित बुद्धि और बुद्धि के ज्ञान का विलय है ऐसी स्थिति हो जाने पर एक परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान जो परम सत्य हैं, रह जाते हैं, अपने समेत अन्य का सर्वथा अभाव हो जाता है, इसी स्थिति का नाम विशुद्ध विज्ञान एवं पराभक्ति, प्रेमाद्वैत तथा रसाद्वैत है।

शिष्य :-

प्रभो ! कुछ लोग कहा करते हैं कि परब्रह्म परमात्मा अपनी माया शक्ति से सम्पन्न होकर सृष्टि के वैभव का प्रदर्शन न करता तो उसे क्या आपत्ति होती? बेचारे मायाबद्ध जीव संसार चक्र में भ्रमण करते हुए संतप्त हो रहे हैं, जिसका कारण सृष्टि कार्य ही है।

गुरुदेव :-

वत्स ! परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान स्वरूपतः सृष्टिमय हैं जैसे समुद्र का स्वभाव अनन्त तरंगों के साथ अपने ही में अपने से ही अठखेलियाँ खेलना है, यदि कोई तरंग अपने को समुद्र से पृथक मान कर कहे कि यह जलधि अगर लहर न पैदा करता तो क्या होता, हम सब उठ-उठकर थपेड़े खाती हैं और अन्ततोगत्वा विनाश को ही प्राप्त हो जाती हैं तो क्या यह कहना उचित है? या संभव है कि समुद्र उर्मियों को उत्पन्न न करे, ठीक इसी प्रकार का प्रलाप अज्ञानियों का है जो अनर्थक है। यदि परमात्मा का सृष्टि कार्य न होता तो उसकी महिमा का विकास व उसका अनुभव कैसे सम्भव हो सकता था तथा क्या ईश्वर है, क्या जीव है, क्या माया है, क्या परमपद है, क्या संसार है, इसका ज्ञान असंभव और अशक्य था, या यों कहिए कि कौन किसका ज्ञान करता अस्तु जो है सब सार्थक है, सनातन है, स्वाभाविक है, सत्य है। सत्य का अभाव कभी नहीं होता, यदि कोई कहे कि सत्य न होता तो क्या होता। यह कहना पागलपने के अतिरिक्त और क्या है। जो वस्तु जैसी है चाहे वह सुखमय हो या दुखमय या सुख-दुख दोनों से युक्त हो, वह वैसी ही रहेगी, उसके स्वाभाविकपने में कोई उलट पलट नहीं कर सकता तो फिर ब्रह्म के विषय में उपर्युक्त तर्क की कोई प्रतिष्ठा नहीं, निर्मूल वार्ता के पोषकों का संग अपने को निर्मूल बना देता है।

शिष्य :–

प्रभो ! ब्रह्म तो सच्चिदानन्दमय है और यह संसार जब ब्रह्म स्वरूप ही है, तब इसमें जीव समुदाय को सुख-दुख की प्रतीति और उससे रागद्वेष के कारण संसार चक्र में भ्रमण करना क्यों होता है?

गुरुदेव :–

वत्स ! महदाकाश में स्थित बहुत से भिन्न-भिन्न आकृति के मठाकाश हैं, जो महदाकाश के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं तथा मिट्टी, पत्थर, चूना, लोहा, लकड़ी और जल के संयोग से उनकी भीत विनिर्मित हुई है, जिससे सभी मठाकाशों में परस्पर भेद की प्रतीति होती है। भीत की वस्तुयें भी आकाश से ही उत्पन्न हैं और उनके अणु-अणु में आकाश सूक्ष्मतया व्यापक रूपेण स्थित है, अब विचार करो कि यदि मठाकाश अपने को महत आकाश से अतिरिक्त मानकर स्थित रहे और भीत के कमजोर हो जाने या गिर जाने से अपने अहंकार के कारण दुखी हो कि हाय ! हम कमजोर हो गये। हाय ! हम मर रहे हैं, तो इसमें उसके दुखी होने का मात्र कारण उसका अभिमान अर्थात् अहंकार ही है अन्यथा मठाकाश का क्या बिगड़ा, भीत रूपी उपाधि नष्ट हो जाने से तो यह महदाकाश ही हो गया। जीवात्मा, दृष्टा बनकर, दृष्य से सम्बन्ध कर लिया अर्थात अनादि अविद्या के कारण अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश नामक पंचक्लेशों से सम्पन्न हो गया यही इसके दुख का हेतु है। वत्स ! सारा खेल अहंकार का है, अहंकार ही पुण्य और पाप का कर्ता है, अहंकार ही स्वर्ग,

नरक भोगता है, अहंकार ही सुख की कल्पना कर अनेक स्वांग करता है अन्यथा जीवात्मा तो ईश्वर का अंश है वह नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त और असंग है।

शिष्य :–

प्रभो ! जब सारा संसार ब्रह्मात्मक अर्थात ब्रह्म स्वरूप ही है तो अहंकार और अज्ञान कैसे उत्पन्न हो जाता है ? ब्रह्म तो ज्ञान स्वरूप है, उसमें अज्ञान कैसे संभव हो सकता है ?

गुरुदेव :–

वत्स ! सूर्य में अन्धकार कभी नहीं हो सकता क्योंकि वह प्रकाश का पुञ्ज है किन्तु अज्ञानी मेघाच्छादित सूर्य को कहते हैं कि सूर्य बादलों से ढक गया है, इसी प्रकार शुद्ध महाचेतन परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान में ज्ञानाभिमानी अज्ञानी लोग अज्ञान का आरोपण करते हैं। हम पहले कह आये हैं कि परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान चिद्चित् विशिष्ट हैं अर्थात जीव और माया विशिष्ट है माया में जड़ता उसी प्रकार है जैसे चेतन प्राणी के नख और लोम में, परन्तु रहते सब चेतन देहधारी के शरीर में ही हैं यथा नख–लोमादि की स्थिति भी चेतन की सकासता से ही है। उसी प्रकार माया अज्ञान की जननी होते हुए भी रहती ईश्वर के साथ ही है। जीव चेतन है, परमेश्वर का सजातीय तत्व है किन्तु उसी प्रकार से अल्पज्ञ और अल्पशक्ति वाला है जैसे अग्नि की चिनगारियाँ अग्नि तत्व से पृथक न होते हुए भी अल्प वीर्या हुआ करती हैं तथा अग्नि राशि से पृथक होकर पृथ्वी के भीतर रहने वाले

अग्नि तत्व में प्रवेश कर समाप्त हो जाती है। वत्स ! अब तुम समझ गये होगे कि परब्रह्म परमात्मा में अज्ञान का सदा अभाव उसी प्रकार है जैसे सूर्य में अन्धकार का। अज्ञान तो मायाबद्ध जीव में माया की सकासता से प्रतिभासित उसी प्रकार होता है जिस प्रकार जल में अग्नि की सकासता से ऊष्णता का अन्यथा जैसे जल का सहज स्वरूप शीतल गुण विशिष्ट ही होता है, वैसे ही जीवात्मा का सहज स्वरूप नित्य, मुक्त, शुद्ध, बुद्ध, और असंग होता है किन्तु अनादि अविद्या जनित अज्ञान के सहयोग से स्वरूप की विस्मृति उसी प्रकार से हो जाती है जैसे प्राण शरीर में रहते हुए भी स्मृति विनाशक औषधि के संयोग से चेतनता की विस्मृति लोक में देखी जाती है। वत्स ! ब्रह्म सदा एक रस रहने वाला अद्वय तत्व है, यह जगत जो है वह भी अपरब्रह्म ही है, यह सर्वथा श्रुति संमत से सत्य है, इसमें जो नानात्व व ज्ञान, अज्ञान, सुख, दुख आदि के अनन्त प्रकार दिखाई देते हैं वह सब पूर्णतम परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान की लीला के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। ज्ञानीजन इस वार्ता का प्रत्यक्षीकरण निरावरण कर लेते हैं क़िन्तु अज्ञानी अपने स्वरूप की हानि कर न स्वयं को, न माया को, और न ईश्वर को ही जानते हैं। वास्तव में पुरुषोत्तम भगवान ज्ञान और अज्ञान से सर्वथा परे अचिन्त्य और अनिर्वचनीय हैं परन्तु सत-असत, ज्ञान-अज्ञान उन्हीं के आश्रयभूत उसी प्रकार है जैसे प्रकाश और अन्धकार सूर्य के अधिष्ठान से ही भासित होते हैं।

शिष्य :–

परब्रह्म परमात्मा असत और अज्ञान का आश्रयभूत क्यों है? असत व अज्ञान का स्थान न होने से परमात्मा की क्या हानि होती?

गुरुदेव :–

वत्स ! परब्रह्म परमात्मा स्वयं सत्य स्वरूप एवं ज्ञान स्वरूप है, इससे असत और अज्ञान उसी प्रकार भासने लगते हैं जैसे प्रकाश युक्त घर में किसी के खड़े रहने से उसकी परछाई रूप अन्धकार भासने लगता है। वत्स ! माया शक्ति परमात्मा में स्थित है इसलिए जब वह स्थूल स्वरूप धारण कर जगत रूप दिखाई देने लगती है, तब असत और अज्ञान भी परिलक्षित होने लगते हैं, परमात्मा की सकासता से ही माया परिभासित होती है इसलिए मायारूपी कारण के कार्य अज्ञान और असत को भी परब्रह्म में ही स्थित कहा जाता है। ब्रह्म का स्वभाव लीलामय है अगर माया शक्ति और उसके कार्य परब्रह्म में न हों तो जगल्लीला बन नहीं सकती इसलिए परमात्मा में माया शक्ति का होना आवश्यक व अनिवार्य है।

शिष्य :–

प्रभो ! कोई–कोई कहते हैं कि जगल्लीला न करते तो क्या हानि परमात्मा की होती। जीवात्मा दुःख का पिण्ड बनकर दुःखी होने से तो बच जाता।

गुरुदेव :–

वत्स! कोई कहे कि गुलाब के फूल में काँटे न होते तो क्या होता? मिश्री मीठी न होती तो मिश्री की क्या हानि होती? इत्यादि दृष्टान्तों के अनर्गल और अति प्रश्न तो किये जा सकते हैं परन्तु जिस वस्तु पर प्रश्न उठाये जाते हैं, उसकी सहजता जो जन्म के साथ जन्म लेने वाले से अभिन्न है, वह कैसे पृथक की जा सकती है। अस्तु, परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान का सहज लीलामय होना अनादि है, इससे उनके विषय में प्रश्न करना उसी प्रकार है कि गाय के सिर में श्रृंग न होते तो क्या हानि होती गाय की। वत्स! यदि जगत न होता तो मात्र अचिन्त्य, अविकल्प, अदृश्य शून्य रहता। ईश्वर, जीव, माया एवं सत–चित आनन्द की स्थिति क्या है, कहाँ है, कौन जानता ?

शिष्य :–

प्रभो! आत्मा की सिद्धि कैसे होती है ? कोई–कोई कहते हैं कि आत्मा कल्पना मात्र है।

गुरुदेव :–

विवेकहीन पुरुष क्या नहीं कह सकते और क्या अनर्थ नहीं कर सकते ? इन लोगों की वार्ता सुनकर श्रवण बन्द करना ही श्रेयस्कर है। अपने आपके अनुभव से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है। "मैं हूँ" "मैं दुखी हूँ,सुखी हूँ" यह अनुभव शरीर को नहीं होता, जो शरीर से सर्वथा पृथक और विलक्षण है, उसे होता है। सबको यह विश्वास होता है कि मैं

हूँ, यह प्रतीति किसी को नहीं होती कि मैं नहीं हूँ; इत्यादि विवेक पूर्ण युक्तियों से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है, तर्क के द्वारा सत्य वस्तु की उपलब्धि नहीं होती किन्तु अनुभव से स्वतः सिद्ध हो जाती है। एक इन्द्रिय अपने विषय के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों के विषयों का ज्ञान नहीं रखती किन्तु जो सर्व इन्द्रियों के विषय का संकलित ज्ञान रखता है, वह इन्द्रियों से भिन्न है, वही आत्मा है। जैसे ककड़ी चबाने से युगपद रूप, शब्द, रस, गंध और स्पर्श का ज्ञान सहज ही सबके अनुभव का विषय होता है, यह अनुभव आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करता है जिसके प्रतिपक्ष का अस्तित्व नहीं होता उसके अस्तित्व को तार्किक दृष्टि से सिद्ध नहीं किया जा सकता। अस्तु– अचेतन तत्व का प्रतिपक्षी यदि चेतन तत्व नहीं मानते तो अचेतन शब्द की भी सिद्धि नहीं होगी इसलिये यदि अचेतन अपरोक्ष देखा जाता है तो चेतन (आत्मा) परोक्ष में अवश्य है जो धीमानों के अनुभव का विषय बनता है। गुण से गुणी का अनुमान कर लिया जाता है, यह सर्वमान्य वार्ता है। चेतन गुणी है और चैतन्य गुण है। सभी भूत समुदाय चैतन्य रूप से अपरोक्ष देखे जाते हैं। देह, इन्द्रिय, मन और बुद्धि अपना–अपना व्यापार करते हैं। अस्तु चैतन्य गुण को देखकर, परोक्ष चेतन का अनुमान और अनुभव अवश्य हो जाता है। इससे आत्मा की सिद्धि सहज ही सिद्ध हो जाती है। नास्तिक यदि आत्मा का निषेध करता है तो भी आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करना पड़ेगा क्योंकि जिसका निषेध होता है वह वस्तु अवश्य होती है, जैसे कोई कहे कि खरगोश के श्रृंग नहीं होते, तो इसका मतलब यह नहीं कि सींग नाम की कोई

वस्तु नहीं होती। नास्तिक यदि कहता है कि आत्मा नहीं होती तो आत्मा संज्ञा वह कहाँ से प्राप्त किया, यह विचारणीय वार्ता है। जो वस्तु नहीं होती उसकी संज्ञा नहीं होती न उसके विषय में संकल्प विकल्प होता और न वाद-विवाद। जिसके रहने से नास्तिक, 'नहीं है' कहने में समर्थ होता है और जिसके न रहने से लोग उसके शरीर को शव कहते हैं, वही आत्मा है। जो वस्तु सर्व वस्तुओं से विलक्षण और पर होती है, जिसके प्रकाश के बिना सर्व वस्तुएं अन्धकार स्वरूप होती हैं, जिसके अस्तित्व के बिना सबका अस्तित्व नष्ट हो जाता है और जिसके अस्तित्व से सबका अस्तित्व विद्यमान रहता है अर्थात जिसकी सत्यता एवं भासा से सम्पूर्ण नाना रूप मायिक कार्य सत्य से प्रतीत होते हैं, वही आत्मा है। वत्स ! उपर्युक्त युक्तियों के द्वारा आत्मा के आत्मा परब्रह्म परमात्मा की भी प्रतीति एवं अस्तित्व सर्वमान्य है।

शिष्य :-

प्रभो ! जब परब्रह्म परमात्मा के अतिरिक्त अन्य तत्वों का सर्वथा अभाव है, तब यह कहना कैसे संभव होगा कि ब्रह्म सर्वदेश, सर्वकाल और सर्व में परिपूर्णतया प्रतिष्ठित है, ऐसा कहने से देश कालादि का होना वैसे सिद्ध होता है जैसे- "घड़े में आम हैं" कहने से आम और घड़ा दोनों वस्तुओं का होना सिद्ध होता है।

गुरुदेव :-

वत्स ! अज्ञानियों को समझाने के लिये व्यवहारिक

और सांकेतिक भाषा का प्रयोग श्रुतियों ने भी अपनाया है। जो बोध विग्रह आचार्य हैं वे अगर उक्त वाणी का प्रयोग न करें तो शिष्य कैसे समझेगा और बिना उस प्रकार को अपनाये आचार्य से उद्बोधन देते कैसे बनेगा। बोध का स्वरूप सर्वभावेन मौन रहना ही है इसलिये जैसे मिट्टी के रंग-बिरंगे बर्तनों में मात्र मिट्टी का दर्शन बालक को कराने के लिये ज्ञानी, बालक के देखे सुने सभी बर्तनों का नाम लेकर व दिखाकर यही कहता है कि प्रत्येक बर्तनों में मिट्टी ही मिट्टी है अर्थात मिट्टी के अतिरिक्त ये और कुछ नहीं हैं, इनके नाम-रूप सब असत्य हैं, टूटने पर ये सब उसी रूप में परिणत हो जायेंगे, जिस रूप की मिट्टी से इनका निर्माण हुआ था। इस वार्ता को सुनकर बालक को बोध हो जाता है, वैसे ही ज्ञानी पुरुष अज्ञानी को समझाने के लिए ही सर्बदेश, सर्वकाल और सर्व में समान रूप से पूर्णतम परब्रह्म परमात्मा प्रतिष्ठित है, आदि वाक्यों का प्रयोग किया करते हैं अन्यथा ब्रह्मबोध हो जाने पर सर्व शब्द एक के उदर में जाकर अदृश्य हो जाता है।

शिष्य :-

प्रभो ! श्रुतियों में ब्रह्म को कहीं-कहीं एक कहा गया है और आपके श्री मुख से दास ने यह सुना है कि ब्रह्म में न एक हैं न अनेक अतएव इस अर्थ को स्पष्ट करने की कृपा करें।

गुरुदेव :–

वत्स ! परब्रह्म परमात्मा अनिर्वचनीय है, उसके विषय में इदमित्थं नहीं कहा जा सकता। एक और अनेक उसके विशेषण उसी प्रकार हैं जैसे निर्गुण–सगुण, प्रलय में एक, और सृष्टिकाल में अनेक शब्द के विशेषण, विशेष्य ब्रह्म के साथ लगाये जाते हैं। श्रुति के वाक्य इसी अर्थ में हैं, एक और अनेक में अद्वैत का दर्शन कर ब्रह्म जिज्ञासु ब्रह्म का स्वरूप विशेषणों से परे और विलक्षण समझकर उसके अनुभवानन्द स्वरूप का अनुभव कर लें।

शिष्य :–

प्रभो ! आप श्री के श्रीमुख से प्रथम यह सुना कि ब्रह्म स्वयं अपने को यह नहीं जानता कि मैं कितना महिमावान हूँ और न देखता न सुनता न कुछ करता। सन्देह यह हो रहा है कि जिसके द्वारा जीव जानने वाला, देखने व सुनने वाला होता है वह क्यों स्वयं को न जानता है और न अन्य को देखता सुनता।

गुरुदेव :–

वत्स ! भावातीत ध्यान में प्रगाढ़तया स्थित आत्मदर्शी योगी जब न स्वयं को जानता और न किसी दृश्य का द्रष्टा बनता, तब सदा एक रस स्वरूप में स्थित परब्रह्म परमात्मा के विषय में स्वयं की महिमा का ज्ञान न होना तथा किसी दृष्य के द्रष्टा न बनने में कौन आश्चर्य? द्रष्टा, दृश्य और दर्शन का कार्य कलाप होते हुए भी परमात्मा में त्रिपुटी का विलीनीकरण

रहता है क्योंकि सर्व रूप में वही एक रहता है। वत्स! समुद्र सदा स्वरूप में स्थित रहता है और यह ज्ञान नहीं रखता कि मुझमें कितनी और कैसी उर्मियां उठ रही हैं कितनी बूँदें उठती हैं, कितने बुदबुदे उठते हैं और भाप बन कर कितना पानी उड़ जाता है तथा नदियों के द्वारा कितना जल आ रहा है क्योंकि सर्व स्वरूप में वही है, इसी प्रकार ब्रह्म के विषय में भी समझो।

शिष्य :–

हे प्रभो ! परब्रह्म परमात्मा को श्रुति, शास्त्र और संतजन सर्वज्ञ कहते हैं और आप कहते हैं कि परब्रह्म न देखता न सुनता। अस्तु, परब्रह्म परमेश्वर को ज्ञाता और द्रष्टा कहना कैसे संभव है, कृपया इस प्रश्न पर प्रकाश डालें।

गुरुदेव :–

वत्स ! परब्रह्म परमात्मा वास्तव में व्यवहारहीन अपरिणामी और एक रस रहने वाला परमार्थ स्वरूप अद्वय तत्व है परन्तु अचिन्त्य सर्व शक्ति समन्वित परमात्मा की शक्ति स्वभावानुसार जब अनेक आकार वाली बृहद सृष्टि का विस्तार करती है, तब महत तत्व (बुद्धि) के आदर्श में परमात्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है और वह स्वयं अपने स्वरूप को दृक् शक्ति, (अखण्ड ज्ञानैक रस स्वरूप नेत्र) से सबका सर्वसमय का सर्व प्रकार का ज्ञान जो उसी के आत्मस्थ है, बिना ध्यान के देखता है इसलिये उसे सर्वज्ञ और द्रष्टा कहने में उसके स्वरूप की कोई हानि नहीं होती। जैसे – एक सिद्ध योगी

समाधि में स्थित होता हुआ भी कभी–कभी चित्त की भीत पर बिना प्रयत्न, बिना नेत्रेन्द्रिय के अनेक दृश्य देख लेता है, उसी प्रकार परमात्मा न देखता हुआ भी, चित शक्ति के सहारे, चित शक्ति की भीत पर ही सबका ज्ञान रखता है, वास्तविक वार्ता तो यह है कि उसके चित शक्ति का ही यह सब चमत्कार है अर्थात वह न देखता, न सुनता और न जानता परन्तु चित शक्ति (योग माया) के सहारे सबको देखता है, सब सुनता है और सबको जानता है या यों कहिए कि परब्रह्म की शक्ति ही सब कुछ करती है, वह सदा अकर्ता ही बना रहता है।

शिष्य :–

प्रभो ! कोई कोई कहते हैं कि परब्रह्म परमात्मा में अज्ञान का स्पर्श जब होता है तब वह माया के साथ औपाधिक हो जाता है अतएव इस पर प्रकाश डालने की कृपा करें।

गुरुदेव :–

वत्स ! सूर्य में अन्धकार का सदा अभाव रहता है क्योंकि वह सहज प्रकाश स्वरूप है। ठीक इसी प्रकार परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान सदा ज्ञान स्वरूप हैं, उनमें अज्ञान का आत्यान्तिक अभाव है अतएव उन्हें अखण्ड ज्ञानैक रस कह कर श्रुतियों ने सम्बोधित किया है। वे विषय, करण, इन्द्रिय, इन्द्रिय देवता, प्राण और जीव के भी प्रकाशक हैं, अज्ञानी लोग अपने अज्ञान का आरोप परब्रह्म परमात्मा पर वैसे ही

करते हैं जैसे पीलिया रोग से प्रभावित नेत्र वाले चन्द्रमा को पीत वर्ण का ही देखा करते हैं।

शिष्य :—

प्रभो ! जीव (चेतन) में अज्ञान कैसे आ जाता है, जबकि वह ब्रह्म स्वरूप ही है।

गुरुदेव :—

वत्स ! सूर्य का प्रकाश सूर्य का ही है और सूर्य से ही सम्बन्धित है, सूर्य के बिना वह असंभावित है किन्तु बादलों के आ जाने से जैसे वह बादल के नीचे भाग में मलिन हो जाता है, वैसे ही जीव, परब्रह्म परमात्मक होते हुए भी प्रकृति सम्बन्ध से मलिन सा दिखाई देने लगता है। स्फटिक मणि शुभ्र होती है किन्तु समीपस्थ लाल, पीले, हरे पुष्पों के प्रतिबिम्ब पड़ने से वह लाल, पीली और हरी रंग की दिखाई देने लगती है, इसी प्रकार चेतन वास्तव में चैतन्य गुणों से सदा संयुक्त रहता है किन्तु अचेतन के संयोग से अचेतन सा लगने लगता है। प्रकाश ज्यों का त्यों रहता है किन्तु काले अक्षरों में पड़ने से काला और लाल अक्षरों में पड़ने से लाल सा लगने लगता है, ठीक यही स्थिति चेतन की भी समझो।

शिष्य :—

प्रभो ! आप श्री के कथनानुसार यह वार्ता हृदय में बैठ गयी है कि चेतन में अज्ञान का स्पर्श होना असंभव है क्योंकि

वह सदा नित्य–मुक्त–शुद्ध–बुद्ध और असंग स्वभाव वाला है। हे कृपालो! एक संशय उर के कोष में उद्भासित हो रहा है कि अक्षर और अक्षरातीत अर्थात पुरुष और पुरुषोत्तम संज्ञक जीव और परमात्मा में एक तत्व होते हुए भी श्रुति–शास्त्र और संत भेद क्यों बतलाते हैं अगर है तो किस प्रकार से ? अस्तु यथार्थतः समझाने की कृपा हो जिससे दास निःसंशय हो जाय।

गुरुदेव :–

वत्स! मैं प्रथम कह आया हूँ कि परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान के अतिरिक्त कहीं और किसी काल में कुछ नहीं है फिर भी ईश्वर, जीव, माया और महदादि तत्वों को लेकर, भेद का वर्णन व्यावहारिक वाणी में अबोध को बोध प्रदान करने के हेतु देखा ही जाता है किन्तु वास्तव में भेद नहीं है क्योंकि परमात्मा एक अद्वय तत्व है। दृष्टान्त के द्वारा भेदाभेद के स्वरूप को समझो। जैसे – आकाश अनन्त है, सूक्ष्म है, व्यापक और अलिप्त है, उसके भीतर अनन्त घटाकाश, मठाकाश स्थित हैं तो भी वह अनन्त शेष है, उसके भीतर अनन्त काल तक घटाकाश, मठाकाश बनते ही जाँय तब भी वह अनन्त ही बचेगा। अब विचार करो कि महदाकाश से पृथक स्थिति घटाकाशादि की कभी हो सकती है? नहीं हो सकती, महदाकाश के अतिरिक्त क्या घटाकाशादि कुछ हो सकते हैं ? नहीं हो सकते, महदाकाश में मठाकाशादि क्या नहीं स्थित है ? अवश्य महदाकाश में ही स्थित है। घटाकाश, मठाकाश सब महदाकाश ही हैं कि नहीं ? सब महदाकाश ही हैं किन्तु

मठाकाश के भीतर दो चार मठ भी नहीं बन सकते जबकि महदाकाश में अनन्त मठाकाश बन जाने से भी वह अनन्त ही शेष रहता है वैसे ही परब्रह्म परमात्मा अनन्त है, अग्नि की चिनगारियों की तरह उससे उसकी जीव शक्ति द्वारा अनन्त जीवात्मा प्रादुर्भूत होकर उसी में स्थित रहते हैं तथा उस ब्रह्म से अतिरिक्त सत्ता व स्थिति जीव की नहीं है, फिर भी जीव अणु है, महान नहीं है, परतन्त्र है, स्वतन्त्र नहीं है, अल्पज्ञ है सर्वज्ञ नहीं है क्योंकि जीव भाव जैसे बुद्धि से संयुक्त होने पर ही होता है, वैसे ही परब्रह्म परमात्मा विश्व-बुद्धि अर्थात महतत्व को उत्पन्न कर पुनः उससे संयुक्त होने पर ईश्वर कहलाता है। जीव की बुद्धि, महतत्व रूपी सिन्धु के एक सीकरांश के समान है इसलिये ईश्वर सर्वज्ञ है और जीव अल्पज्ञ है इसलिए जीव परब्रह्म परमात्मा पुरुषोत्तम भगवान की तरह जगत के उद्भव-पालन और प्रलय की सामर्थ्य नहीं रखता अतएव ब्रह्म जीव में भेद है और तत्वतः अभेद है।

शिष्य :–

प्रभो ! जीव, जीव में भी भेद होता है क्या?

गुरुदेव :–

वत्स ! जैसे मठाकाश तत्वतः सब एक है किन्तु किसी में देवमूर्ति विराजती है, किसी में राजा रहता है, किसी में वेदपाठी ब्राह्मण वेद-ध्वनि करते हैं, किसी में दूकान लगी है, और किसी में कुछ, किसी में कुछ रखा है, कोई छोटे हैं, कोई बड़े हैं, कोई स्वर्ण के हैं कोई रजत के, कोई पत्थर के

और कोई मिट्टी के, कोई घास फूस के, कोई किसी रंग के, कोई किसी रंग के। अस्तु- उपर्युक्त भेद से भेद अवश्य दीखता है। इसी प्रकार जीव जीव में भी भेद है, सब अपने-अपने कर्म के अनुसार फल भोगते हुए दीख पड़ते हैं किन्तु यह भेद औपाधिक है, तत्वतः जैसे आकाश में भेद नहीं वैसे ही जीव जीव में भेद नहीं है।

शिष्य :–

प्रभो! आपकी युक्ति एवं दृष्टांत से यह वार्ता बुद्धि में बैठ गई है कि परब्रह्म के अतिरिक्त जगत में कुछ नहीं है, माया एवं जीव भी ब्रह्म ही हैं, कहा भी गया है कि, "अयम् आत्मा ब्रह्म" भेद मुधा है फिर भी सत्य सा प्रतीत होता है, उपाधि मिटने पर भेद की प्रतीति नष्ट हो जाती है अन्यथा जैसे महदाकाश और घटाकाश में तत्वतः भेद न होते हुए भी भेद दीख पड़ता है, महदाकाश महान और घटाकाश अल्प, महदाकाश अनन्त अवकाश वाला और घटाकाश अल्प अवकाश वाला स्पष्ट ज्ञान का विषय बनता है, वैसे ही ब्रह्म और जीव के विषय की वार्ता आप श्री के मुख से सुनकर संशयहीन हो गया, जैसे घटाकाश की आकृति टूट जाने पर उसका आकाश महदाकाश के भीतर ही स्थित हो जाता है वैसे ही अहंभाव के नष्ट हो जाने पर, जीव से जीव-भाव दूर होकर, एक ब्रह्म भाव ही जो सत्य स्वरूप है, रह जाता है। प्रभो! अब यह जानने की जिज्ञासा है कि जो मुधा भेद है, वह दूर कैसे हो तथा भक्ति निष्ठ महानुभाव ब्रह्म स्वरूप होकर भी भक्त और भगवान का भेद कैसे और क्यों बनाये रहते हैं।

गुरुदेव :-

वत्स! पूर्णतम परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान का आश्रय ग्रहण कर अनन्य भाव से भजन करते-करते उँनकी कृपा से भेद बुद्धि नष्ट हो जाती है और एक अद्वय परमार्थ स्वरूप परब्रह्म परमात्मा के ज्ञान से शरणागत चेतन, परमानन्द स्वरूप हो जाता है। प्रेम लक्षणा प्रेमा पराभक्ति के अधिकारी की स्थिति प्रेमाद्वैत में सहज ही होती है अर्थात एक अद्वय तत्व के अतिरिक्त उन्हें अन्य का ज्ञान ही नहीं होता, संसार की स्मृति दिलाने पर भी उनके स्मृति-पटल पर संसार के नाम, रूप का कोई किसी प्रकार का चित्र कभी चित्रित नहीं होता फिर भी वे अपने अद्वय ज्ञान के अन्दर ही भक्त और भगवान का भेद इसलिये बनाये रहते हैं कि ब्रह्मानन्द से विलक्षण भगवदानन्द का सुख मिलता रहे। प्रेमानन्द, परमानन्द, रसानन्द आदि के आनन्द का स्वाद जिसे मिल गया वह अपनी इच्छा से अद्वैत में द्वैत का चित्र उसी प्रकार बनाये रहता है, जैसे स्वर्ण की एक शिला में ही भगवान और भक्त का चित्र अंकित करके चित्र में भेद दिखाया जाता है। वास्तव में तो वे दोनों चित्र स्वर्ण के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। भक्ति भाव के अधिकारी का द्वैत, अद्वैत के अतिरिक्त अकिञ्चित है क्योंकि उसके चित्त में अहंकार का बीज सर्वथा समाप्त हो जाता है। पूर्णतम, परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान ही भक्त और भगवान की लीला माधुरी का आस्वाद लेते हैं क्योंकि वे रस स्वरूप हैं।

शिष्य :–

प्रभो ! आपकी अहैतुकी कृपा से यह वार्ता भी समझ में आ गई कि भक्त और भगवान में उसी प्रकार का भेद प्रतीत होता है। वास्तव में है नहीं, जैसे स्वर्ण की मूर्ति और उस मूर्ति के 'अंगों में' काढ़े गये अलंकार स्वर्ण–मूर्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं।

गुरुदेव :–

वत्स ! तुम्हारी बुद्धि बड़ी सूक्ष्म है, जिससे आचार्य वाक्यों के अवधारण करने की क्षमता सन्निहित है।

शिष्य :–

प्रभो ! यह सब आप श्री की अकारण भूता कृपा–शक्ति का चमत्कार है, अन्यथा इस अबोध शिशु के हृदय में बोध कहाँ। प्रभो ! यह जिज्ञासा हृदय में उत्पन्न हो रही है कि परब्रह्म परमात्मा का बोध किसको और कैसे होता है।

गुरुदेव :–

वत्स ! वास्तव में परमात्मा, बुद्धिरूपी यन्त्र के द्वारा अपने को स्वयं जानने वाला व देखने वाला है, यथा "आत्मनात्मानम् वेत्थ"। बुद्धि परमात्मा की जानकारी करने में सर्वथा असमर्थ है, जैसे लोक में लोग दर्श के द्वारा अपनी मुखाकृति को अपने ही देखते हैं किन्तु दर्श उस मुखाकृति का अनुभव करने में सर्वथा असमर्थ है, भले ही मुख का प्रतिबिम्ब उसमें पड़ता हो, क्योंकि वह सर्वथा जड़ है।

शिष्य :–

हे मेरे सद्‌गुरुदेव! बुद्धि और आत्मा में एकता की जो भ्रान्ति हो रही है, वह क्यों और कैसे दूर हो?

गुरुदेव :–

वत्स! जैसे अग्नि और जल को एक में मिला देने से अग्नि बुझकर ठण्डी हो जाती है, पानी ऊष्ण हो जाता है अर्थात् अग्नि की ऊष्णता शीतल पानी में मिलकर जल के आकार से पृथक प्रतीति का विषय नहीं बनती। उसी प्रकार चेतन का संयोग जब बुद्धि के साथ होता है तब वह देह इन्द्रिय मन-बुद्धि और प्राण के आकार का होकर इन्हीं को अहंकारवश अपना स्वरूप मानने लगता है तथा चेतन उसी प्रकार देहाभिमानी से अदृश्य सा रहता है जैसे उपर्युक्त ऊष्ण जल में अलग से अग्नि। वत्स! शरीर संघात से चेतन (आत्मा) की पृथकता अर्थात् अन्यता का ज्ञान, आत्म-विशारद, शाब्द ब्रह्म और परब्रह्म में निष्णात सद्‌गुरुदेव के वचनो में प्रतीति करके, श्रवण-मनन-निदिध्यासन करता हुआ, जिज्ञासु दीर्घकाल, निरन्तर आदरपूर्वक अभ्यास और वैराग्य में लगे रहने से अवश्य प्राप्त कर लेता है।

शिष्य :–

हे मेरे सद्‌गुरुदेव! यह दृश्यमान जगत का बाहुल्य कैसे बुद्धि से पृथक होकर अदृश्य हो जाय और उसके स्थान पर परब्रह्म का दर्शन होने लगे।

गुरुदेव :-

जो पदार्थ आदि और अंत में नहीं रहता केवल मध्य में दृष्टिगोचर होता है वह स्वप्न के समान असत होता है, जैसे जाग जाने पर स्वप्न की असत्यता स्वयं स्पष्ट हो जाती है, वैसे ही विगत मोह आत्मदर्शी को जगत के नानात्व का सर्वथा अदर्शन हो जाता है। जो वस्तु आदि और अन्त में अस्तित्ववान है, वही वस्तु मध्य में भी रहती है और जिसका आदि-अन्त में अस्तित्व नहीं है, उसका मध्य में भी नहीं है। जैसे, सुवर्ण आदि में था, उससे कटकादि अनेक आभूषण बने, पुनः आभूषणों के टूट जाने पर भी सुवर्ण ही रहा, इससे सिद्ध होता है कि स्वर्ण ही आभूषण के रूप में दिखाई दे रहा था, वैसे ही प्रथम एक परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान ही थे, वही जगत के उपादान, निमित्त और सहकारी कारण थे अर्थात वही जगत बनाने वाले और वही जगत बनने वाले थे और अन्त में (जगत के प्रलय समय में) वही एक रहते हैं इसलिए परब्रह्म परमात्मा ही सत्य है और वही मध्य में भी जगत रूप में दृष्टि के विषय बनते हैं।

शिष्य :-

प्रभो! बड़ी कृपा हुई आप श्री की। दास के अज्ञान की आँखें प्रकाशित हो गईं, ब्रह्म-दृष्टि प्राप्त हो गई। अहो! ब्रह्म वार्ता हृदय में बैठ गई, जब परब्रह्म ही जगत को बनाने वाला तथा स्वयं जगत बनने वाला भी है। ब्रह्म ही रक्षक है, तथा रक्षित भी वही है और संहार करने वाला भी ब्रह्म ही है तथा संहारित होने वाला भी ब्रह्म ही है, एक भी वही, अनेक

भी वही, आदि में वही और अन्त में भी वही, अस्तु, कारण-कार्य की एकता स्पष्ट सिद्ध है। अहा! ब्रह्म प्राप्ति हो गई। अरे! हो नहीं गई, क्या ब्रह्म खोया था, ब्रह्म-प्राप्ति पहले भी थी, मध्य में भी थी और अब भी है, मैं स्वयं ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं हूँ। हे संशय शमनकारी सद्गुरुदेव! जीव और माया परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान का शरीर है, जो विचार करने पर परमात्मा से अपृथक ही सिद्ध होते हैं, किन्तु माया ऐसी मोहिनी है कि जीव को परब्रह्म परमेश्वर से विमुख करने का ही कार्य सतत किया करती है और जीव भी माया के चंगुल में फँसकर मोह की फांसी को अपने गले का हार बनाकर, बड़े रुचि के साथ अवधारण करता है, जिसके कारण वह यह भूल जाता है कि मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? किसका हूँ? मेरा स्वरूपानुसार क्या कर्तव्य है ? अपने को विपरीत ज्ञान के आकार का बनाकर स्वयं कर्ता, भोक्ता और रक्षक समझकर, स्वतन्त्र, स्वेच्छाचारी, उछृंखल और उत्पथगामी बन जाता है, इसका क्या कारण है ?

गुरुदेव :-

वत्स! वास्तव में "इदं सर्वं शरीरं ते" के अनुसार सारा दृश्य प्रपञ्च भगवान का शरीर है, अस्तु भगवत स्वरूप ही है। भूत, भविष्य, वर्तमान में जो त्रिगुणात्मक दृश्य का दर्शन हुआ था, होगा और हो रहा है, वह सर्वभावेन परब्रह्म परमात्मा की लीला के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। ज्ञान, अज्ञान, सत्यासत्य से संश्लिष्ट दृष्टियाँ भी लीला मात्र हैं जो पुरुषोत्तम भगवान की शक्ति के सामर्थ्य से विविध वैचित्र्य के

रूप में दर्शकों को दिखाई दे रही है। नट की शक्ति से जादूगरी के विविध दृश्य दिखाये जाते हैं, जो जादूगर की लीला के अतिरिक्त कुछ नहीं है किन्तु जादूगर के जम्बूरे को उसके विविध दृश्यों में मोह नहीं होता वह जादूगर को ज्यों का त्यों खड़ा देखता है, उसे अन्य का बोध होता ही नहीं और नट के सेवक के अतिरिक्त सभी दृश्य दर्शन करने वाले संसारियों को मोह वश विविध प्रकार का दृश्य दिखाई देता है, अस्तु यही निष्कर्ष निकला कि परब्रह्म परमात्मा के सेवक को सारा दृश्य ब्रह्म स्वरूप ही दृष्टिगोचर होता है और संसारियों को संसार की विविधता का दर्शन होता है। वत्स! अपने आप में विविधता का खेल खेलने के लिये और अपने ही देखकर अपने में अपने से, आनन्द लेने के लिये अनादि काल से अनन्त संज्ञक ब्रह्म स्वयं अनन्त रूप होकर, सृष्टि के सृजन, संरक्षण और संहार की लीला अपनी आत्म-भूमि में अपने ही करके, वैसे ही प्रसन्न होता है जैसे अबोध बालक अपने मुख की चंचलाकृति को दर्पण में देखकर। वत्स! स्वप्न दर्शन करने वाले के पास इन्द्रियों के अर्थों की अविद्यमानता पर भी अनर्थ का आगमन अवश्य होता है वैसे ही मोह-रात्रि में सोने वाले जीव को संसार का स्वप्न दिखाई पड़ता है और तदनुसार सुख-दुख का भोग, भोक्ता न होने पर भी भोगना ही पड़ता है और जैसे जाग जाने पर स्वप्न के सारे दृश्य असत्य तथा तत्सम्बन्धी सुख-दुख बिना सत्ता के झूठे दृष्टिगोचर होने लगते हैं, स्वप्न के अनर्थों से अपना कोई सम्बन्ध नहीं रहता, वैसे ही आत्म दर्शन हो जाने से जीव मोह-रात्रि में शयन नहीं करता, वह सदा के लिये जाग जाता है और संसार के सुख

दुखादि (जो अनादि अविद्या के कारण होते से दिखाई देते हैं) से पार हो जाता है, अज्ञान दृष्टि बदलकर ज्ञानमयी हो जाती है। वत्स! ब्रह्म ने सृष्टि करने का जब संकल्प किया तब वही अनेक रूप हो गया अर्थात अनेकता का आनन्द लेने के लिये "आनन्दं ब्रह्म" का यह व्यापार हुआ किन्तु वह उस रस वैचित्र्यी का आस्वाद लेने के लिये अनेक नियमों को बनाया अर्थात ओम् से लेकर वेद-शास्त्र पुराण-इतिहास और स्मृतियों की रचना की और सब से कहा कि तुम सबके रूप में हम स्वयं ब्रह्म हैं, तुम अपने को कर्ता भोक्ता न मान कर इस लीला क्षेत्र में बिना अहं और आसक्ति के अपना अपना पाठ करना। माया के बिना लीला कार्य होता नहीं इसलिये गुणमयी प्रकृति को ही कर्ता मानना जो हमारी सकासता से कार्य करने में सक्षम हो रही है यदि तुम लोग ऐसा न करके स्वयं कर्ता भोक्ता बनोगे, स्वतन्त्र बनकर स्वेच्छाचार करने लगोगे तो तुम्हें संसार के बन्धन बँध जाना होगा। जैसे लोक में लोग अनुकरण लीला करते हैं, यदि उन लीला पात्रों में भिक्षुक का पाठ करने वाला स्वयं को सही भिक्षुक मान बैठे और सुध बुध खोकर, लीला बन्द होने पर भी भिक्षा माँगकर ही भोजन करे और घर की स्मृति न रखकर, पेड़ों के नीचे रहने लगे तो लीला के अभिनेता का क्या दोष? दशरथ जी महाराज का पाठ करके, श्री राम जी के वियोग में कुछ पाठक प्राण त्याग दिये, परशुराम जी का पाठ करके अन्त में श्रीराम जी को प्रणाम कर कई पाठक सही बन में भजन करने चले गये तो इसमें लीला का पाठ देने वाले का क्या दोष है? कुछ नहीं, ठीक इसी प्रकार जीव अज्ञान की खोल पहनकर उसी में

आसक्त हो जाता है। स्वस्वरूप और परमात्म स्वरूप को भूलकर भटक जाता है। श्रीहरि–गुरु–संत–शास्त्र और श्रुतियों का निर्देशन समय समय पर होता रहता है किन्तु समझ नहीं पाता। वत्स ! यह भी परमेश्वर की लीला ही है, जानकर विचारशील पुरुष गुण और दोष का दर्शन प्रकृति में करते हुये, आत्मा को असंग जान कर आनन्द का ही अनुभव करते हैं। नट के नटपन का ज्ञान नट का सेवक रखता हुआ, नट को व अपने को नहीं भूलता तो नट की कला का कोई प्रभाव उस पर नहीं पड़ता, इसी प्रकार परमेश्वर की सकाशता से माया द्वारा की गई जगल्लीला को जीव माया मात्र समझे और अपना पारतन्त्र्य सम्बन्ध ईश्वर से बनाये रहे तो मोह में नहीं पड़ता और न विपरीत ज्ञानवश दुःख का पिण्ड ही उसे बनना पड़ता।

शिष्य :–

प्रभो ! परब्रह्म परमेश्वर सर्व समर्थ हैं, वे चाहें तो जीव, माया के चक्कर में पड़कर अज्ञान दशा का वरण न करे।

गुरुदेव :–

वत्स ! ईश्वर अवश्यमेव सर्व समर्थ हैं अगर वे चाह लें तो जीव अज्ञानी बने ही नहीं किन्तु उनकी इच्छा मात्र से जब सर्व मुक्ति प्रसंग उपस्थित हो जायेगा तब लीलामय की अनादि काल से प्रवाहित जगल्लीला का प्रवाह अवरुद्ध हो जायगा और परब्रह्म परमात्मा ही रह जायगा। ईश्वर क्या है?

माया क्या है? और जीव क्या है, यह ज्ञान त्रिकाल बाधित हो जायगा, कौन किसका ज्ञान करेगा, इसलिये परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान की लीला अनादि काल से ऐसी ही चल रही है और आगे ऐसी ही चलती रहेगी।

शिष्य :–

हे प्रभो! इस चेतन के आत्यान्तिक दुःख की निवृत्ति और शाश्वत सुख की संप्राप्ति कैसे संभव हो सकती है, कृपया इस विषय पर प्रकाश डालें।

गुरुदेवः–

जब तक प्रकृति से जीवात्मा का सम्बन्ध किसी प्रकार का बना हुआ है तब तक आत्यान्तिक दुःख की निवृत्ति असंभव है और जब तक सर्वभावेन ब्रह्म सम्बन्ध जीवात्मा को सहज संप्राप्त न होगा तब तक शाश्वत सुख अर्थात आत्यान्तिक आनन्द ही अनुभूति जीवात्मा को असंभव है, इसलिए प्रकृति से पार होकर परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान की संप्राप्ति करने से ही जीवात्मा परमानन्द स्वरूप बन पायेगा।

शिष्य :–

हे संशय समुदाय को शमन करने वाले सद्गुरुदेव! प्रकृति सम्बन्ध विनिर्मुक्त जीवात्मा अपने आत्यान्तिक दुःख की निवृत्ति करके, बिना पुरुषोत्तम भगवान की संप्राप्ति एवं उनकी सेवा किये बिना, अमृतानन्द की अनुभूति का अधिकारी भी हो जाता है क्या ?

गुरुदेव :–

वत्स ! केवल प्रकृति बीज के सर्वथा जल जाने से अर्थात तत्सम्बन्ध सर्वभावेन विनष्ट हो जाने पर जीवात्मा केवली भूत हो सकता है अर्थात केवलानन्द स्वरूप संप्राप्त कर लेगा परन्तु स्वरूप स्थिति दशा में अनुभूति असंभव है, कौन किसका अनुभव करें? किन्तु भगवत भावापन्न भक्तिमान पुरुष भगवदानन्द (परमानन्द) की अनुभूति सर्वभावेन करने का पूर्ण अधिकारी बन जाता है, अर्थात अमृत बन कर अमृतानन्द का आस्वाद लेता है क्योंकि भगवद्‌भक्त अद्वय तत्व का साक्षात करते हुए भी अमृतानन्द की अनुभूति करने के लिए अद्वैत की शिला पर द्वैत का काल्पनिक चित्र बनाये रहते हैं अर्थात एक अखण्ड अद्वितीय ब्रह्म में ही भगवान और भक्त का भावनास्पद चित्र–चित्रित किये रहते हैं और "आनन्दं ब्रह्म" "रसो वै सः" 'रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति' श्रुति वाक्यों के अर्थों का विग्रह बनकर अमृतमय, आनन्दमय, प्रेममय, रसमय हो जाते हैं किंबहुना साक्षात ब्रह्म बनकर ब्रह्म–रस की अनुभूति करते हैं।

शिष्य :–

प्रभो ! जीव दुरत्यय माया से पार होकर, परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान के आनन्द विग्रह की अनुभूति करने में किस उपाय को वरण कर समर्थ हो सकता है?

गुरुदेव :–

वत्स ! परब्रह्म परमात्मा किसी उपाय का अवलम्बन

लेकर प्राप्त नहीं किया जा सकता, अपितु जिसको वह स्वयं वरण करता है वही उस परमात्मा को प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है अर्थात परब्रह्म परमात्मा स्वयं अपनी प्राप्ति के उपाय हैं। जीवात्मा अपनी ओर से किये गये कर्म, ज्ञान उपासनादि योगों के द्वारा प्राप्त करना चाहे तो उसके सारे अनन्त काल के शुभ कर्म परमात्म प्राप्ति कराने में समर्थ नहीं हो सकते और यदि परमात्मा जीवात्मा को प्राप्त करना चाहे तो जीवात्मा के अनन्त काल के अनन्तापराध भी विरोधक नहीं बन सकते।

शिष्य :–

प्रभो जब कर्म, ज्ञान, उपासनादि परमात्मा की प्राप्ति कराने में असमर्थ हैं, तब सम्पूर्ण वेद एवं शास्त्रों में वर्णित उपायों का क्या प्रयोजन सिद्ध होता है?

गुरुदेव :–

वत्स! परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान की कृपा के वैभव से अनभिज्ञ एवं स्वरूपानुकूल अनुष्ठान की पात्रता से वञ्चित पुरुषों के कल्याण की कामना से वेद, कर्म, ज्ञान उपासना, योग आदि अनुष्ठानों में लगाता है, जिससे जीवात्मा का मन पवित्र होकर परमात्मा के ज्ञान की ओर झुकता है, तदनन्तर उन परम देव का आराधक होता है और योगादि के साधनों से उक्त ज्ञानादि कार्यों की सिद्धि में सहायता संप्राप्त करता है, साधन समुचित चलते रहने पर अर्थात दीर्घकाल निरन्तर सत्कार पूर्वक साधन सेवन करते करते भूमिका दृढ़ हो जाती

है अर्थात कृपा का क्षेत्र तैयार हो जाता है, आत्म और अनात्म ज्ञान, आत्मा और परमात्मा का ज्ञान अधिगत कर लेने पर स्पष्ट मालूम हो जाता है कि जीवात्मा परमात्मा के परतन्त्र है उसकी परिपुष्टि परमात्मा की कृपा से ही संभव है, जीव स्वरूप भी परमात्म स्वरूप के भीतर है, जीव पृथक सत्तावान नहीं है तब सर्वभावेन अहंकार की परिसमाप्ति हो जाती है और अहंकार हीन होने पर परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान की कृपा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकारी यह जीव हो जाता है वह परमार्थ स्वरूप, प्रेम स्वरूप, रस स्वरूप, अमृत स्वरूप और आनन्द स्वरूप बन जाता है। सारांश यह है कि श्रुतियों ने साधन पथ का निर्देशन, साधन का अभिमान त्यागने एवं परमात्मा की कृपा प्राप्ति की पूर्ण पात्रता प्राप्त करने के लिये किया है। कर्मण्याभिमानियों को कर्म करने की प्रेरणा देकर कर्म करते करते थक जाने के लिये, बुद्धिमानों की बुद्धि को खुराक देते देते भूख का अंत न पाकर लौटने के लिये साधनों का निर्देशन श्रुति शास्त्रों ने दिया है ताकि सारा अभिमान गलित कर जीव भगवत कृपा का पूर्ण अधिकारी उसी प्रकार बन जाय, जैसे पिता की पूर्ण सम्पति का अधिकारी पितृभक्त सुपुत्र बन जाता है।

शिष्य :—

प्रभो! परमात्मा की पूर्णकृपा प्राप्त करने की अधिकार स्थिति कब होती है?

गुरुदेव :–

वत्स ! जब मुमुक्षु जीव सब साधनों का आश्रय छोड़कर, परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान की आर्तिपूर्ण प्रपत्ति करता है (शरणागति लेता है) तब वह कृपाप्ति का पूर्ण अधिकारी बन जाता है। शरणागति सिद्ध साधन है, स्वरूपानुरूप है क्योंकि इसमें परमात्मा स्वयं उपाय होता है अर्थात उपायोपेय में भेद नहीं होता है। तत्पश्चात परमात्मा, कृपा–परवश हो जीव को जब स्वयं वरण करता है तब यह चेतन, परमात्मा की प्राप्ति एवं साक्षात् कर लेता है, अस्तु, परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति का उपाय स्वयं परमात्मा ही हैं, साधन नहीं।

शिष्य :–

हे प्रभो ! शरणागति ग्रहण करने एवं भजन सेवन करने के लिये, सगुण साकार भगवान सर्व सुलभ हैं, ऐसा आप निर्देशन दे चुके हैं किन्तु संशय यह है कि परमधाम प्रतिष्ठित प्रभु के किस नाम का स्मरण एवं रूप का ध्यान कर, प्रपत्ति एवं आराधना करनी चाहिये।

गुरुदेव :–

वत्स ! परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान एक अद्वय तत्त्व हैं किन्तु उपासकों की भावना के अनुसार, उनके अनंत नाम, रूप, लीला और धाम हैं, साधक को जो नाम प्रिय हो, वही नाम वाले भगवान के आश्रय को ग्रहणकर उन्हीं के नाम का निरन्तर जप, रूप का ध्यान, लीला का चिन्तन और धाम प्राप्त करने की त्वरा उत्पन्न करना चाहिये परन्तु अन्य नाम, रूप,

लीला और धाम को अपने ही आराध्य देव के मानकर द्वेष नहीं करना चाहिये, जो परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान के अन्य नामों से द्वेष करते हैं, वे अन्धकार में हैं, उन्हें भगवत तत्त्व का किंचित ज्ञान नहीं है, प्रभु की अहैतुकी कृपा से ही उनका उत्थापन होना संभव है।

शिष्य :–

कोई केवल परमात्मा की उपासना करते हैं और अन्य देवताओं से अश्रद्धा रखते हैं और कोई केवल देवताओं को पूजते हैं किन्तु परब्रह्म परमात्मा की परवाह नहीं रखते हैं अस्तु इस प्रश्न का समीचीन उत्तर पाकर दास बोधमई वार्ता को हृदयंगम करना चाहता है।

गुरुदेव :–

वत्स ! जो परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान की उपासना करते हैं किन्तु उनके अंगभूत शिवादि देवताओं की निन्दा, अवहेलना एवं अश्रद्धा करते हैं, उनकी यह प्रवृत्ति उसी प्रकार की है जैसे कोई पुरुष अपने मित्र को चाहता है किन्तु उसके घर में आग लगाता है, उसके सगे सम्बन्धियों की निन्दा करता है किंबहुना अपने प्रतिकूल मित्र के अंगों को भी व्यथित करता रहता है जिससे मित्र उसके व्यापार से सदा दुखित रहता है अतएव ऐसे उपासकों पर प्रभु दया करें। उन्हें अन्धकारमय लोकों में जाने से बचायें जो व्यक्ति देवताओं की उपासना करते हैं किन्तु परब्रह्म परमात्मा के ज्ञान से रहित होकर उनकी अवहेलना किया करते हैं, उनका व्यापार ऐसा

ही है जैसे कोई व्यक्ति अपने किसी मन्दिर के बाह्य भाग को सदा साफ सुथरा रखे किन्तु मंदिर के भीतर प्रतिष्ठित आराध्य देव की कभी पूजा न करे, भोग न लगावे, उन्हें वैसे ही पत्थर के समान पड़ा रहने दे अर्थात् अंग की पूजा करना और अंगी से विरोध रखना कहाँ तक कल्याण का हेतु होगा इसलिये सुधी पुरुष को चाहिये कि परब्रह्म परमात्मा के अंगभूत किसी देव को द्वेष दृष्टि से न देखते हुये ही पुरुषोत्तम भगवान की उपासना करे। उत्तम भक्त चराचरात्मक सारे विश्व को प्रभु का शरीर समझकर, सबको प्रणाम करता है तथा किसी से न घृणा करता न द्वेष करता सबमें अन्तर्यामी रूप से अपने प्रभु का दर्शन कर-करके परम प्रसन्न मना बना रहता है।

शिष्य :-

प्रभो! आप श्री ने इस अपने अज्ञानी दास के तमसाछन्न ह्रदय की कुटीर को प्रकाशमय बनाने के लिये अपनी प्रकाशमयी वचनावली का प्रयोग भली-भाँति किया है, आपकी कृपा से ह्रदय के आकाश में सद्गुरु के ज्ञान का सूर्य, प्रकाश भी कर रहा है किन्तु एक प्रार्थना यह है कि आप पुनः अपने कथित उपदेशों का सार अल्प वाक्यों में मेरे समातुर कर्णों में प्रवेश कराने की कृपा करें।

गुरुदेव :-

वत्स! मेरे आज के उपदेश वाक्यों का सारांश यह है कि जो दृष्टि-पथ में आता है और जो नहीं आता, जो श्रवण

गोचर होता है और जो नहीं होता, जिसे जाना जाता है और जिसे नहीं जाना जाता, जिसे मन-वाक् का विषय बनाया जाता है और जिसे नहीं बनाया जा सकता अर्थात् गो गोचर और अगोचर जिसे अपर और पर कहते हैं, वह परब्रह्म परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है अर्थात् स्वगत स्वजातीय और विजातीय भेद से रहित एक अद्वय तत्व पुरुषोत्तम भगवान ही सर्व ओर से सर्वभावेन संप्रतिष्ठित हैं। जीव और प्रकृति उस परब्रह्म परमात्मा के शरीर हैं जैसे रामदास नामक चेतन व्यक्ति की पहचान उसके देह को देखकर ही की जा सकती है तथा उसका मान सम्मान संतृप्ति उसके देह के माध्यम से अर्थात देह को ही रामदास मानकर की जाती है क्योंकि रामदास से शरीर को भिन्न नहीं माना जाता तथा रामदास शरीर के अणु-अणु में प्रतिष्ठित भी है अतएव इसी प्रकार जीव और प्रकृति को परमात्मा का शरीर जानकर, परमात्म-दृष्टि से देखना ही दिव्य दृष्टि है, कारण और कार्य को एक करके जानना ही ज्ञान की पराकाष्ठा है। निर्गुण-निराकार, निर्विशेष जो है वही सगुण-साकार सविशेष है, जो सगुण साकार सविशेष है वही निर्गुण-निराकार-निर्विशेष है, जो द्वैत है वही अद्वैत है और जो अद्वैत है वही द्वैत है, अस्तु वाद-विवाद में न पड़कर परमात्म प्राप्ति के साधन में लग जाना ही पुरुषार्थ प्राप्ति के प्रशस्त पथ पर प्रस्थान करना है। साधन का मर्म सद्गुरुदेव से श्रवण कर साधक तदनुसार वृत्ति के पथ पर चलकर परमात्मा का साक्षात्कार अवश्य कर लेता है, इसमें नाम मात्र का संशय नहीं है। निर्गुण ब्रह्मोपासना से सगुणोपासना सरल और सुखदायक अवश्य है अतः सुधी पुरुष सगुणाराधना

से परमानन्द की प्राप्ति सदा से करते आये हैं, कर रहे हैं और आगे भी करेंगे। बौद्धिक तत्व के विशेष अधिकारी मानव को ब्रह्म जिज्ञासा उत्पन्न न हुई तो वह अमानव ही है, अतएव मानव देह का यही पुरुषार्थ है कि वह परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान की प्राप्ति देह रहते ही कर ले, अन्यथा अन्धकारमय लोकों का निवास ही उसके हाथ लगेगा।

शिष्य :–

प्रभो! प्रथम आप श्री ज्ञान, विज्ञान अर्थात परोक्षज्ञान और अपरोक्ष ज्ञान की व्याख्या करके दास को भली भाँति समझा चुके हैं किन्तु हृदय में यह जानने की इच्छा है कि परोक्षज्ञान का फल तथा ज्ञानी की सही स्थिति क्या है तथा अपरोक्षज्ञान अर्थात विज्ञान का फल तथा विज्ञानी की सही स्थिति क्या हैं?

गुरुदेव :–

वत्स! जब सदगुरु–सुश्रुषा–परायण शिष्य को ब्रह्म के परोक्ष ज्ञान की प्राप्ति होती है तब उसके हृदय में परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान के प्रति निर्मल निष्काम प्रेम का उदय होता है जिससे प्रेमिक शिष्य के हृदय में परमात्म दर्शन की त्वरा उत्पन्न हो जाती है तथा उसका हृदय भागवद्धर्मों का आवास एवं सर्व वासना शून्य बन जाता है और तदनुसार उस परम जिज्ञासु परोक्षज्ञान प्राप्त किये हुए ज्ञानी की सारी चेष्टायें भागवद्धर्ममयी होने लगती हैं। जब परोक्षज्ञानी को अपरोक्षज्ञान अर्थात विज्ञान प्राप्त होता है तब वह कृत कृत्य हो जाता है,

अमृत हो जाता है, आनन्दमूर्ति बनकर आनन्द का अनुभव करता है, वह सदा परमानन्दस्वरूप पुरुषोत्तम भगवान में ही स्थित रहता है अस्तु भगवद्रूप होता है, पराभक्ति प्राप्त भक्त के चित्त की त्रिपुटियों का विलीनीकरण हो जाता है। वत्स ! परमात्म ज्ञान प्राप्त करने का फल है परब्रह्म परमात्मा पुरुषोत्तम भगवान में प्रीति उत्पन्न हो जाना, भवगत्प्रीति की उपयोगिता परम प्रेमास्पद भगवान को सर्व समर्पण कर देने में है, सर्व स्मर्पण की उपयोगिता प्रभु के हृदय में परम भास्वती कृपा को उत्पन्न करने में है, कृपा की उपयोगिता प्रभु के हृदय को द्रवीभूत करके जीव से मिलने की त्वरा उत्पन्न करने में है, भगवान के हृदय में जीव से मिलने की त्वरा उत्पन्न होने की उपयोगिता परब्रह्म परमात्मा स्वयं उपेयोपाय बनकर अपने आश्रित को अपना साक्षात्कार करा देने में है, परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान की प्राप्ति की उपयोगिता भगवत् कैंकर्य में है, भगवत् कैंकर्य की उपयोगिता प्रभु के मुखाम्भोज के विकास में है, प्रभु के विकसित मुखार्विन्द की उपयोगिता जीव (दास) को आनन्दमय बना देने में है. जीव के आनन्दमय बन जाने की उपयोगिता जीवात्मा और परमात्मा को अशेष कार्य के पद पर प्रतिष्ठित करने में है, अशेष कार्य पद प्रतिष्ठा की उपयोगिता आनन्दमय, रसमय, प्रेममय अद्वयतत्व के अतिरिक्त और कुछ न रहने में है।

शिष्य :–

प्रभो जब प्रेमाद्वैत, रसाद्वैत, आनन्दाद्वैत स्वरूप अद्वय तत्व की स्थिति हो जाती है, तब सगुणोपासक भक्त अपने

भावनास्पद स्वरूप का दर्शन, कैंकर्य तथा परस्परालापानन्द से वञ्चित हो जाते हैं क्या?

गुरुदेव :-

नहीं नहीं वत्स! त्रिपुटी के विलीन होने पर प्रेम, प्रेमी और प्रेमास्पद की संज्ञा का ज्ञान अवश्य नहीं रहता किन्तु लीलामय पुरुषोत्तम भगवान अपने भक्त के भावानुसार अपने ही में अपने से उसी प्रकार प्रेम, प्रेमी और प्रेमास्पद की लीला स्वयं करके आनन्दमय बने रहते हैं, जैसे समुद्र में लहरें अस्त होकर पुनः उदित होती रहती हैं। उस प्रेमाद्वैत की हानि उसी प्रकार नहीं होती जैसे महासमुद्र की महानता की हानि लहरों के उदय और अस्त से नहीं होती।

शिष्य :-

प्रभो! सगुण साकार ब्रह्म के उपासक राम, कृष्ण, नृसिंह, नारायण आदि रूपों एवं नामों की उपासना करते हैं किन्तु देखा गया है कि अपने उपास्य भगवान के नाम, रूप के प्रति जैसी श्रद्धा लोग रखते हैं वैसी श्रद्धा, अन्य, नामों, रूपों एवं उपासकों पर नहीं रखते उलटे द्वेष करते हैं, कृपया इस विषय पर प्रकाश डाला जाय, जिससे आपका अनुचर संशय के वन में न भटके।

गुरुदेव :-

वत्स! परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान एक हैं किन्तु लीला विभूति की लीला सम्पादन एवं भक्तों के कार्य हेतु भगवान

अनन्त लोकों तथा अनन्त वैकुण्ठों में अनन्त नामों रूपों से विराजते हैं, इसी प्रकार प्रभु के अनन्त अवतार भक्तों की भावनानुसार धराधाम में हुआ करते हैं उनके भी नाम, रूप, गुण सब अनन्त हुआ करते हैं। परमात्मा की सृष्टि में अनन्तानन्त प्राणि-समूह उत्पन्न होकर सब भिन्न-भिन्न रुचि रखने वाले होते हैं अतएव वे स्वइच्छानुसार अर्थात् अपने-अपने हृदय एवं मस्तिष्क की प्रेरणानुसार, कोई किसी नाम रूप की उपासना करते हैं, कोई किसी नाम-रूप की, हैं सब नाम-रूप एक अद्वय तत्व परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान के, अस्तु सबका लक्ष्य एक होने से एक ही अद्वयतत्व की प्राप्ति सभी करते हैं। वत्स! यह बात सत्य है कि जिस नाम का जप और जिस रूप का ध्यान नित्य किया जाता है, उस नाम-रूप में अभ्यास के कारण अधिक प्रीति का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है, तदनुसार लीला और धाम भी अधिक रुचिकर हो जाते हैं किन्तु तत्वज्ञ पुरुष को भगवान के अन्य नामों रूपों धामों व लीलाओं में न्यूनता का दर्शन करके अभाव निन्दा व द्वेष करना उसी प्रकार घातक है जैसे पत्नी अपने इष्ट पति के मुख को परम भोग्य समझकर उसका आदर आसक्ति पूर्वक करे और पति के ही अन्य अंगों का अनादर और अवहेलना करे, अपने पति के शयन कक्ष को सम्मान पूर्वक स्वच्छ रखे और पति के ही सभासदन आदि कक्षों का अनादर कर कभी झाड़ू भी न लगावे, पति के शयन केलि की लीला में आसक्ति रखे तथा अपनी सहचरियों से उसे कहे, सुने और पति की अतिरिक्त चर्या जो सदाचारमयी सद्गुण सम्पन्न है, उससे उपरत रहे और अनादर करने का विषय बनाये रहे, इसी

प्रकार पति का स्वप्रिय नाम उसे अच्छा लगे और माता-पिता मित्र इत्यादि से लिया हुआ नाम उसके झुंझलाने का विषय बन जाय तो कहाँ तक यह वार्ता उसकी सही है, ठीक इसी प्रकार स्वप्रिय भगवान के नाम, रूप, लीला और धाम के प्रति श्रद्धा और सम्मान करना तथा उन्हीं प्रभु के अन्य नाम, रूप, लीला और धाम के प्रति अश्रद्धा और असम्मान की दृष्टि से देखना है।

वत्स ! यह रहनि अज्ञानियों की है, ज्ञानियों की नहीं। अनन्य भक्ति और ज्ञान का वृथा अभिमान सिर में वहन करना मोक्षकामी के अनुरूप नहीं है इसलिये साधक को चाहिए कि परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान के सभी नामादि चतुष्टयों को अपने इष्ट नामादि के सदृश समझकर अनादर असूया और अवहेलना न करें। हाँ, अपने आराध्य नाम, रूप लीला, धाम की प्रियता में अन्य नामादि स्मृति का विषय न बने तो कोई आपत्ति नहीं प्रसंग आने पर प्रभु के किसी अन्य नामादि चतुष्टयों को कह सुनकर अपने हृदय में प्रेम और आनन्द का अनुभव करे और यह समझे कि यह सब नाम, रूप, लीला और धाम हमारे ही इष्टदेव के हैं।

शिष्य :–

प्रभो ! भगवत आश्रय ग्रहण कर आसक्तमना, परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान का भजन करना चाहिए ऐसी आज्ञा श्रीमद्भगवत गीता में श्री आनन्दकन्द कृष्ण भगवान से दी गई है जिसकी परिपुष्टि आपश्री के वचनों से भी हो रही है। अतएव दास धन्यातिधन्य हो गया, बुद्धि में बैठ गया कि ब्रह्म

के अपरोक्ष अनुभव का फल है, प्रेम-प्रवणता के साथ सर्व समर्पण किये हुए, तत्सुख सुखित्वम् की सुन्दर भावना से पूर्ण प्रभु कैंकर्य करना, जिसे मनीषी, परम पुरुषार्थ कहते हैं।

गुरुदेव :-

हाँ ! यह स्मरण रहे कि देहाभिमान, स्वरूपाभिमान, उपायाभिमान, कर्तृत्वाभिमान, ज्ञातृत्वाभिमान और भोक्तृत्वाभिमान शून्य होने पर ही यह जीवात्मा, ब्रह्मभूत (परमात्मा का अंगभूत) होकर उसी प्रकार स्वाभाविक पुरुषोत्तम भगवान का कैंकर्य तत् मुख-कमल विकास हेतु करने में समर्थ हो सकता है जैसे अंगी के प्रसन्नार्थ अंग बिना किसी अहं के सेवा करते हैं। वत्स ! ब्रह्मज्ञान मात्र हो गया किन्तु उस ब्रह्म से प्रेम न हुआ, आत्मा परमात्म समर्पित होकर ब्रह्माकार न हुई अर्थात अहं की संज्ञा समाप्त होकर भेद बुद्धि दूर न हुई, अभेदज्ञान की शिला में अंगी-अंग का साक्षात् दर्शन करते हुए स्वामी सेवक (नवविधा जीवात्मा परमात्मा का अनागन्तुक सम्बन्ध) भाव न हुआ और तदनुकूल सर्वविधि कैंकर्य कुशलता न प्राप्त हुई तथा कैंकर्य से भगवान का विकसित मुखार्विन्द देखकर अंगभूत आत्मा को अपना प्रयोजन सिद्ध हुआ देखकर आनन्द न मिला अर्थात सच्चिदानन्दमय महान भौमा सुख की अनुभूति न हुई तो सारा साधन, सारा ज्ञान, व्यर्थ सिद्ध हुआ, अतएव यह सत्य समझो कि कर्म, ज्ञान, उपासना, अष्टांग योगादि साधनों की उपयोगिता परमात्म ज्ञान में है और क्रमशः उत्तरोत्तर चलकर परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान के कैंकर्य की प्राप्ति में है जिससे जीवात्मा का परम पुरुषार्थ सन्निहित है।

शिष्य :–

प्रभो ! कर्म, ज्ञान, उपासना, भगवदाश्रय (प्रपत्ति) से परमात्मा की प्राप्ति निःसंदेह सुलभ हो जाती है या प्राप्ति का कोई अन्य उपाय है।

गुरुदेव :–

वत्स ! कर्म, ज्ञान, उपासना, प्रपत्ति अपने अनुष्ठानकर्ता को अवश्यमेव परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति करने की पात्रता प्रदान करते हैं इसलिये इनका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये किन्तु ये कर्म, ज्ञान, उपासना तथा स्वरूपानुरूप सिद्ध साधन शरणागति भी फल देने में पुरुषोत्तम भगवान की अपेक्षा रखते हैं अर्थात स्वयं समर्थ नहीं हैं, जैसे साधन हीन कोई क्षुधातुर किसी अन्नदाता धर्ममूर्ति के विषय की जानकारी भलीभाँति करके उसके अन्न–क्षेत्र में गया और श्रद्धा विश्वास तथा प्रिय वचनों को अपनाकर पेट खलाकर पाने को सिद्ध भोजन माँगा, परन्तु असमय के कारण रसोई समाप्त हो चुकी थी, अस्तु वितरण करने वाले व्यक्ति ने "नहीं है" उत्तर दे दिया, सुनते ही भूखा भिखारी मूर्छित होकर गिर गया, वहीं पर बैठे हुए एक दयालु दाता को बड़ी दया आई और तुरन्त हलवाई के यहाँ से पक्वान्न लाकर भूखे को पवाया, तब वह स्वस्थ हुआ। अब विचार करो कि भूखे भिखारी का दाता–ज्ञान, अन्न क्षेत्र में चलकर जाना रूप कर्म, श्रद्धा–विश्वास तथा प्रिय वचन रूप उपासना तथा पेट खलाकर दरवाजे में पड़ जाना रूप प्रपत्ति, उसको भोजन मिलने की उपाय न हुई, उपाय हुई दयालुदाता की दया। अतएव परमात्म प्राप्ति का उपाय परब्रह्म

पुरुषोत्तम भगवान की अहैतुकी कृपा ही है, अर्थात परमात्मा अपनी प्राप्ति कराने का उपाय स्वयं है यही श्रुति शास्त्र सम्मत सिद्धान्त है। हाँ! यह ध्यान रखना कि सिद्ध साधन (प्रपत्ति) में स्थित रहने से प्रभु विवश होकर कृपा करते ही हैं।

शिष्य :–

हे प्रभो! यदि परमात्मा, अपनी प्राप्ति का स्वयं उपाय है, तब तो उसकी इच्छा मात्र से उसकी प्राप्ति सबको सुलभ हो जानी चाहिये क्योंकि वह सर्व समर्थ और समदर्शी है साथ ही उसकी कृपा मात्र से सर्व मुक्ति प्रसंग आ जाने पर शास्त्रों और साधनों का कोई प्रयोजन ही सिद्ध नहीं होता। अस्तु- समाधान पाने की आकांक्षा पूर्ण करने की कृपा करें।

गुरुदेव :–

वत्स! तुम्हारी शंका जिज्ञासु शिष्य के अनुकूल ही है, अतएव समाधान वार्ता को श्रवण करो।

परमात्मा कृपालु और समदर्शी अवश्य है किन्तु "प्रियतमो वरणीयो भवति" के अनुसार उसी को वरण करता है जो अनन्य प्रयोजन एवं अनन्य गति होकर पुरुषोत्तम भगवान की आर्तिपूर्ण प्रपत्ति करता है, जो न उनकी शरणागति करता, न ह्दय में उनके प्रति कोई प्रेम रखता है, उसको वे उसी प्रकार नहीं अपनाते जैसे कोई सर्व समर्थ राजा अपना स्नेह-भाजन समान रूप से सम्पूर्ण प्रजा समुदाय को बनाना तो चाहता है किन्तु स्व स्नेही बनाकर उसी को अपना पाता है जो प्रेमी राजा का, राज्य विधि से अतीव प्रेम पाने के लिये आतुर

होकर, अपना सर्वस्व त्यागकर मिलने की प्रतीक्षा में आकुल-व्याकुल बना रहता है अन्यथा जब तक राजा के मन में उसके प्रति-प्रतीति नहीं हो जायगी, तब तक नहीं अपनायेगा, यदि राजा अपने से ही सारी प्रजा को अपना प्रेम प्रदान कर दें तो राज्य शासन संभवतः न चल सकेगा सब स्वतंत्र स्वेच्छाचारी बनकर आत्म विनाश के स्वयं कारण बनेंगे, अतएव बिना शरण आये और बिना परमात्म प्रेम की उत्कट अभिलाषा के सर्व समर्थ प्रभु अपना कर सबको मुक्ति प्रदान कर दें तो पुनः लीला विभूति का दर्शन अप्राप्य ही रहेगा, इसलिये जो उनके शरण में आता है उसी को वे वरण करते हैं। शास्त्रों में साधनों का वर्णन सार्थक है। सकामियों को लोक परलोक के ऐहिक और पारलौकिक (स्वर्गादि) भोगों की प्राप्ति के लिये उनकी उपयोगिता है, तथा निष्कामियों के द्वारा निष्काम कर्म (भगवदर्थ कर्म) कराकर उनके मन को पवित्र कराने का तात्पर्य साधनों को समझना चाहिये, साथ ही साधन करते-करते साधन का अभिमान जब नष्ट हो जाता है तब साधक को भगवत् कृपा का अवलम्बन दृष्टिगोचर होने लगता है और अविलम्ब प्रभु-कृपा से परमात्म साक्षात्कार कर लेता है, अर्थात उसे पूर्णतया ब्रह्म प्राप्ति हो जाती है, इसलिए ब्रह्म-प्राप्ति के लिये शास्त्रों में वर्णित साधनों की उपयोगिता सहज ही सिद्ध हो जाती है अर्थात साधन सहायक बनकर प्रभु प्राप्ति की पात्रता प्रदान कर देते हैं। पात्रता उत्पन्न हो जाने पर प्रभु, जीवात्मा को वरण कर लेते हैं अर्थात अपना लेते हैं।

शिष्य :–

हे ज्ञान प्रदाता ज्ञान स्वरूप मेरे सद्‌गुरुदेव! आपकी ज्ञान ज्योति से दास के हृदय की कोठरी प्रकाशित हो गई, दास गत सन्देह हो गया, आप श्री के अहैतुक कृपा की जै हो, जै हो, जै हो।

गुरुदेव :–

वत्स! यह ज्ञान अनधिकारी को न देकर, ब्रह्म जिज्ञासा से संयुक्त अधिकारी को प्रदान करना पूर्ण परब्रह्म परमात्मा की पूर्ण सेवा है। अस्तु ज्ञान–गरिमा की संरक्षा करते हुये, प्रभु सेवा में तत्पर रहना ही अपना स्वरूप समझना। परमात्मा की सेवा परमात्मा में स्थित रहने पर ही संभव है अतएव उनसे अपनी पृथक सत्ता कभी न समझना, साथ ही सदाचार से सम्पन्न बने रहकर मेरी प्रसन्नता का हेतु बने रहना।

अनन्त श्री विभूषित श्री स्वामी रामहर्षणदास जी महाराज का अमूल्य भक्ति साहित्य :-

१. वेदान्त दर्शन (ब्रह्मसूत्र व्याख्या) सजिल्द एवं अजिल्द
२. श्री प्रेम रामायण (तृतीय संस्करण) सजिल्द
३. औपनिषद् ब्रह्मबोध
४. गीता ज्ञान
५. रस चन्द्रिका
६. प्रपत्ति-प्रभा स्तोत्र
७. विशुद्ध ब्रह्मबोध
८. ध्यान वल्लरी
९. सिद्धि स्वरूप वैभव (द्वितीय संस्करण)
१०. सिद्धि सदन की अष्टयामीय सेवा
११. लीला सुधा सिन्धु (द्वितीय संस्करण)
१२. चिदाकाश की चिन्मयी लीला
१३ वैष्णवीय विज्ञान
१४. विरह वल्लरी
१५. प्रेम वल्लरी
१६. विनय वल्लरी
१७. पंच शतक
१८. वैदेही दर्शन
१९. मिथिला माधुरी
२०. हर्षण सतसई
२१. उपदेशामृत
२२. आत्म विश्लेषण
२३. राम राज्य
२४. सीताराम विवाहाष्टक
२५. लीला विलास
२६. प्रपत्ति दर्शन
२७. रहस्यत्रय भाष्यम

प्रकाशन विभाग

श्री रामहर्षण कुंज, नयाघाट, परिक्रमा मार्ग,

अयोध्या, जिला साकेत (उ.प्र.) २२४१२३